नम्र-निवेदन

सत्यकी हकीकतसे अपरिचित अनेक भाई ऐसा कहते हैं कि सोनगढ़में श्री कानजी स्वामी अकेले श्री समयसार शास्त्रका व्याख्यान करते हैं। जिसके सुनने से उनके अनुयायी लोगोंने पूजन, दानादिक श्रावकके षट्कर्मोंका करना छोड दिया है। उनका ऐसा प्रचार करना समाजमें भ्रम फैलानेके उद्देश्यसे वास्तविकताके विपरीत है।

सोनगढ़में अनेक शास्त्रोंका व्याख्यान किया गया है और होता है जिनमें से कितने ही शास्त्रोंके नाम इस प्रकार हैं—

(१) श्री समयसार
(२) „ प्रवचनसार
(३) „ नियमसार
(४) „ पचास्तिकाय,
(५) „ अष्ट पाहुड
(६) „ आत्मानुशासन
(७) „ अनुभव प्रकाश
(८) „ द्रव्य सग्रह
(९) „ स्वामी कार्तिकेय अनुप्रेक्षा
(१०) „ समाधि शतक
(११) „ समयसार नाटक
(१२) „ पद्मनदि पचविशतिका
(१३) श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक
(१४) „ धवला भाग (१)
(१५) „ गोमटसार कर्मकांड
(१६) „ परमात्म प्रकाश
(१७) „ तत्वार्थ सार
(१८) , इष्टोपदेश,
(१९) „ सत्ता स्वरूप
(२०) „ उपादान निमित्तके दोहे
(२१) „ भक्तामर स्तोत्र
(२२ „ अपूर्व अवसर
(२३) „ आत्म-सिद्धि
(२४) „ तत्वज्ञान तरगणी आदि।

अभी हाल ही में आचार्य श्री उमास्वामी विरचित श्री मोक्ष शास्त्र या तत्वार्थ सूत्रकी टीका गुजराती व हिन्दी भाषामें प्रकाशित की गई है उसमें ५२ शास्त्रोंके प्रमाण दिये गये हैं। और श्री जैन सिद्धात प्रश्नोत्तर माला प्रकाशित हुई है—उसमें भी करीब ५० शास्त्रोंका आधार दिया गया है। यह सब अगर सोनगढ़में एक ही शास्त्र श्री समयसारजी का व्याख्यान होता होवे तो इतने शास्त्रोंके प्रमाण देनेका ज्ञान किस प्रकार किया जा सकता है? इससे साबित होता है कि उपरोक्त प्रकारका प्रचार समाजमें सिर्फ भ्रम फैलानेके उद्देश्यसे ही किया जाता है।

सोनगढ़में इसके उपरात कई वर्षोंसे मई मासमें विद्यार्थियोंके लिए व श्रावण मासमें प्रौढ़ वर्गके लिए अध्ययन वर्ग चलते हैं उनमें (१) श्री जैन-सिद्धांत प्रवेशिका, (२) श्रीद्रव्य-सग्रह, (३) श्रीछहढाला, (४) श्रीमोक्ष मार्ग प्रकाशक आदि पद्धति अनुसार पढ़ाये जाते हैं। जिससे अनेक मुमुक्षु भाई लाभ उठाते हैं।

सोनगढ़में चारों अनुयोगोंके शास्त्रोंका पठन पाठन होता रहता है, ऐसी कोई बात नहीं है कि किसी अनुयोगका पठन पाठन सोनगढमें न होता हो।

सोनगढ़में श्री जिन मन्दिर, श्री समवसरण मडप, श्री मानस्थम बने हुए हैं। जिनमें बहुत ही सुन्दर व मनोज्ञ श्रीजिन प्रतिमायें विराजमान हैं और मुमुक्षु भाई-बहनें दर्शन, पूजन स्वाध्याय, भक्ति आदि करते हैं। महाराज श्री के उपदेशोंसे लाभ उठानेके लिए आने वाले मुमुक्षु भाइयों और बहनोंकी दिनों दिन वृद्धि होनेके कारण श्री जिन मन्दिरके आगेकी जगहका भाग छोटा पड़ता था और दर्शन, पूजन, भक्ति आदि करने वाले मुमुक्षु भाइयोंको जगहकी कमीके कारण असुविधा होती थी। इसलिए अभी हाल ही में काफी खर्चा करके श्री जिन मन्दिरजी का जीर्णोद्धार कराया जाकर आगेमें काफी बड़ा हाल बना लिया गया है जिससे कि मुमुक्षु भाइयों और बहनोंको दर्शन, पूजन भक्ति आदि करनेमे पूरी सुविधा रह। उसमें प्रथमानुयोगके विषयोंके अनेक प्रकारके चित्र काफी खरचा करके चित्रित किये गये हैं। इसके अलावा सोनगढ़में (१ श्री स्वाध्याय हाल (१) श्री कुन्द-कुन्द प्रवचन हाल है जिनमें प्रथमानुयोगके कथानकोंके अनेक सुन्दर चित्र दीवालों पर चित्रित हैं और उनके नीचे सक्षेपमें चित्रोंके परिचय भी लिखे हुए हैं। अगर प्रथमानुयोग के शास्त्रोंका पठन-पाठन न होता हो तो ईस प्रकारके चित्रोंका ज्ञान व परिचय किस प्रकार किया गया?

श्रीपद्मनन्दी पंचविंशतिका शास्त्र श्रीपद्मनन्दी आचार्य कृत है उसमें २६ अधिकार हैं। उनमें से 'देशव्रतोद्योतन" नामका १ अधिकार है उसके ऊपर सोनगढ़में गत वर्ष २०१२ के माह मासमें पूज्य श्री कानजी स्वामीका प्रवचन हुआ था वह गुजराती दैनिक प्रवचन प्रसादमें प्रकाशित

हो चुका है। उसका ही हिन्दी अनुवाद कराके इस पुस्तिकाके रूपमें आपके सामने प्रस्तुत किया जाता है, आप इस पुस्तिकाको पढ़कर स्वयं विचार करें कि पूज्य श्री कानजी स्वामीका कितना सारगर्भित व्याख्यान है, और श्रावकके षट्कर्मोंको प्रतिदिन करने पर महाराजके शब्दोंमें किस प्रकारका वजन है। इसमें (श्रावकके षट्कर्मोंका) संक्षेपमें बहुत ही सुन्दर स्वरूप समझानेमें आया है। इसको पढ़कर कोई भी विवेकी भाई यह नहीं कह सकता कि पूज्य कानजी स्वामी (सोनगढ वालोंका) का उपदेश, पूजन, दानादिक (श्रावकके षट्कर्मोंको) छुडा देने वाला है। क्या सौराष्ट्र गुजरातमें जगह-जगह श्री दिगम्बर जैन मदिरोंका निर्माण होना पूज्य श्री कानजी स्वामीके सत् उपदेशका फल नहीं है ? क्या यह दान पूजनादिक श्रावकके षट्कर्मों के छुड़ाने वाले उपदेशका ही फल है ? यथार्थतासे विपरीत ऐसा भ्रामक प्रचार भी किया जाता है कि सोनगढ़ वाले व्यवहार नयको और उसके विषयको नहीं मानते। ऐसा प्रचार करने वाले श्री कानजी स्वामीका उपदेश सुनने या प्रवचन पढ़नेका कष्ट नहीं करते, अगर थोडा-सा भी कष्ट करते तो ऐसा नहीं कहते। ऐसा मिथ्या प्रचार करने वाले कहते हैं और मानते हैं कि व्यवहारनय पहिले होता है और निश्चय नय पीछे होता है। सो उनका यह कहना और मानना गलत है। सच्ची बात यह है कि जबतक जीवको सम्यक्श्रुत ज्ञान नहीं होता तब तक एक भी नय (निश्चय या व्यवहार) होता ही नहीं। यह सब शास्त्रोंका व अनन्त ज्ञानियोंको अभिप्राय है, और निश्चय सम्यग्दर्शन बिना सम्यग्श्रुतज्ञान (भाव श्रुतज्ञान) कभी किसीके होता नहीं है। इसलिए व्यवहार नय पहिले और निश्चय नय पीछे होता है यह मान्यता बिलकुल गलत है। ऐसी मान्यता तो श्वेताम्बर शास्त्रों की है, और श्वेताम्बर मत अनुयायी कहते हैं कि दिगम्बर मान्यतामें निश्चय नयको पहिले कहते हैं सो भूल कहते हैं— उनकी एक पुस्तक श्वेताम्बर अनुयायी श्री यशोविजयजी रचित दिक्पदके चौरासी बोल में लिखा है कि—

निश्चयनय पहिले कहे, पीछे ले व्यवहार।
भाषाक्रम जाने नहीं, जैन मार्गका सार॥
तातैं सो मिथ्यामति, जैन क्रिया परिहार।
व्यवहारी सो समकिती, कहै भाष्य व्यवहार॥
जो नय पहिले परिणमे, सोइ कहे हित होय।
निश्चय क्यों घूरि परिणमे, सूक्ष्ममति करी जोय॥

अगर इसी प्रकार अपनेको दिगम्बर आम्नायानुयाइयों की मान्यता होवे तो वह दिगम्बर आम्नायके विरुद्ध और श्वेताम्बर आम्नायके अनुकूल है।

दिगम्बर जैनधर्मका सत्य स्वरूप क्या है वह पूज्य श्रीकानजी स्वामी भली प्रकार समझाते हैं। निश्चय सम्यग्दर्शन चतुर्थ गुणस्थानमें होता है पीछे पचम गुण स्थानमें दो कषायोंका अभाव होनेपर जो वीतरागताका अश प्रगट होता है उस जीवके कैसे शुभ भाव होते हैं उसकी स्पष्टता इस "देशव्रतोद्योतन" नामक अधिकारके व्याख्यान द्वारा बताई गयी है। निश्चय सम्यग्दर्शन हुए बिना जो व्रत, तप होते हैं उनको सर्वज्ञ भगवानने बालव्रत, बाल तप कहा है। इसलिए मोक्ष सुखके अभिलाषी मुमुक्षुओं को इन बातोंको बराबर लक्ष्यमें रखनी चाहिए।

सोनगढसे मासिक 'आत्म-धर्म' गुजराती व हिन्दीमें प्रकाशित होता है (जिनका वार्षिक मूल्य ३) यानी चार आने माहवार है) और दैनिक 'प्रवचन प्रसाद' गुजराती भाषामें निकलता है जिसमें पूज्य श्री कानजी स्वामीका दैनिक व्याख्यान प्रकाशित होते हैं। इनके अलावा समय-समयके व्याख्यानोंकी पुस्तकें भी प्रकाशित होती रहती हैं। सत्स्वरूपके जिज्ञासुओं को इनका अभ्यास करना चाहिए और मिथ्या प्रचार करने वालोंके धोखे में नहीं पड़ना चाहिए। यही मेरा नम्र निवेदन है।

आपका मन्त्री
श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल
कलकत्ता

देश व्रतोद्योतनम्

(श्रावण वदी १३ सोमवार ता० १५-८-५५)

इस शास्त्रके रचयिता दिगम्बर आचार्य श्री पद्मनंदि मुनिराज हैं। मुनि जंगलमें निवास करते हैं, आत्माका ज्ञान हो जाने से उनके उग्र चारित्र-दशा होती है, उनके पास वस्त्र, पात्र आदि नहीं होते, वे केवल पीछी और कमंडल रखते हैं। श्रीमद् राजचन्द्रजी ने इस 'पद्मनंदि पंच विंशतिका' को 'वन-शास्त्र' कहा है। आत्मका भान कर पात्र होकर इसे पढ़ना चाहिए। 'वन शास्त्र' कहने का अभिप्राय यह है कि इसकी रचना दिगम्बर मुनिने की है। आत्मा आनन्द-कन्द स्वरूप है, इसकी श्रद्धा ही सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन-पूर्वक अपनी अंतरंग शक्तिका अनुभव करते हुए वे वनमें रहते थे। एक बार उनके शुभ विकल्प हुआ और तत्परिणाम स्वरूप उन्होंने इस ग्रंथकी रचना की। ग्रंथमें पच्चीस अधिकार हैं। अनेक बार पर्वकालमें इस शास्त्रका प्रवचन किया जाता है।

इस अधिकारमें बताया गया है कि गृहस्थ-दशामें मुनि धर्म नहीं अपना सके तो, गृहस्थाश्रममें किस प्रकार धर्म हो सकता है। आत्माकी उग्र दशा चारित्र है। मुक्ति अर्थात् पूर्ण आनन्द दशाका कारण चारित्र दशा है, वह मुनि धर्ममें है। उसे विरला जीव ही पा सकता है। जो मुनि धर्मका पालन नहीं कर सके

उन्हें देशव्रतका प्रकाश (वृद्धि) करना चाहिए। देशव्रत अर्थात् पंचम गुणस्थानक का उद्योत किस प्रकार हो इसका व्याख्यान इस अधिकारमें किया गया है। सम्यग्दर्शनके बिना श्रावकपना नहीं होता। मुनि उस साधक अवस्थामें होता है, सिंह जैसी निर्भय वृत्ति रखता है। ऐसा अगर कोई न हो सके तो सम्यग्दर्शनपूर्वक दान आदि षट् आवश्यक कर्म उस भूमिकामें किए जाते हैं। चरणानुयोगमें ऐसा कथन आता है कि श्रावक छह कर्मों को करता है उसे निमित्त का कथन समझना चाहिए।

क्या कुलमें जन्म लेनेसे श्रावक हो जाते हैं ? इस प्रश्नके उत्तर स्वरूप श्री पद्मनंदि आचार्य इस अधिकारके प्रथम श्लोकमें बताते हैं कि पंचम गुणस्थानकमें श्रावकपना कैसे होता है।

गाथा—१

बाह्याभ्यंतरतयासंगवर्जनतया ध्यानेन शुक्लेन यः।
कृत्वा कर्म चतुष्टयक्षयमगात्सर्वज्ञता निश्चिताम्॥
तेनेक्तानि वचांसि धर्म कथने सत्यानि नान्यानितद्।
भ्राम्यत्यत्र मतिस्तु यस्य स महापापी नभव्योऽथवा॥१॥

श्रावक दशासे पहले मुमुक्षु जीवको सर्वज्ञ की यथार्थ श्रद्धा करनी चाहिए।

इस गाथामें श्रावक होनेसे पहले सम्यग्दर्शन कैसे होता है, यह बतलाया है। कोई भी जीव सम्यग्दृष्टि बननेके बाद

श्रावक होता है। वह देव किसे मानता है? वह एक मात्र सर्वज्ञको ही देव मानता है जो एक समयमें तीन काल और तीनों लोकके ज्ञाता हैं, अन्य किसी को नहीं। जैसे हमें कोई वस्तु लेनी हो तो बाजारमें उसकी भली प्रकार जांच करके ही लेते हैं उसी प्रकार उपदेशक सर्वज्ञ कैसे होते हैं, इसकी परीक्षा कर श्रद्धा की जाय तभी सम्यग्दर्शन होता है।

भगवान कैसे हैं? उन्होंने सर्वज्ञ होनेके लिए क्या किया? सर्वज्ञ होने से पहले वे बाह्यमें दिगम्बर थे, उनके पास वस्त्र-पात्र नहीं थे; अन्तरंगमें चौदह प्रकारका परिग्रह—मिथ्यात्व, रागद्वेष कषाय छूट गए थे। आनन्द स्वरूप आत्माका अवलम्बन करनेसे अन्तरंग परिग्रह छूट जाता है; तत्परिणाम स्वरूप बाह्य परिग्रह छूट गया। महाव्रतका विकल्प आता है; उस विकल्पको पुण्य बन्धनका कारण मानते है, हेय मानते हैं; ऐसी अवस्था मुनि दशामें होती है। आत्मा शुद्ध, अमूर्त है उसमें तल्लीनतापूर्वक उज्ज्वल-शुक्ल-ध्यान प्रकट करके ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय नामक चार कर्मोंका नाश किया—यह निमित्तका कथन है। चरणानुयोगमें निमित्तके अनेक कथन आते हैं। आत्मा, जड़ कर्मोंका नाश तो कर ही नहीं सकती। आत्माके शुद्ध स्वभावमें एकाग्रता करनेसे विभावादि नष्ट हो गए और कर्म स्वयमेव नष्ट हो गए, इसीको यह कहा जाता है कि उन्होंने कर्मोंका नाश किया। एक समयमें तीन काल-तीन लोकका ज्ञान जिन्हें हो गया है ऐसे सर्वज्ञ की परीक्षा करनी

चाहिए। जैसे व्यापारके लिए तनतोड़ परिश्रम किया जाता है उसी प्रकार यहा भी श्रम करना चाहिए।

सर्वज्ञके वचन सत्य है अन्यके नहीं। जिन्होंने एक समयमें तीन काल और तीन लोकको जान लिया उन्हींकी वाणी सत्य है। सर्वज्ञके अतिरिक्त अन्यके वचन सत्य नहीं है। मुनि सर्वज्ञके अनुसार ही कहते हैं, सर्वज्ञके वचन सत्य हैं। देखो, ये पद्मनंदि आचार्य हजार वर्ष पूर्व हुए हैं उनका कहना है कि जीवको अनन्त कालमें शाति नहीं मिली। वह कैसे मिल सकती है? इसके लिए उपाय बताते हैं कि भगवानकी वाणीसे शांति मिलती है, अन्य की वाणी सत्य नहीं।

जिसने अपने ज्ञान स्वभाव की महिमा जान ली, उसहीने सर्वज्ञ को मान लिया।

जिस जीवको सर्वज्ञ देवके वचनोंमें सन्देह है, उसे पापी समझना चाहिये। जो सर्वज्ञ भगवान और अन्य छद्मस्थके वचनोंमें अन्तर नहीं जानता वह पापी है। अन्य वस्तुएं, अथवा सोना आदि लेनेमें जीव परीक्षा करता है। अगर किसी पहाड़ मे सोना हो और १००) रु० खर्च करने से अगर ६०) रु० का ही सोना मिले तो वहांसे कोई नहीं ले किन्तु अगर १००) रु० खर्चनेसे १२५) रु० का सोना मिले तो सोना निकाले। जैसे— इन कार्योंमें परीक्षा कर ही कार्य करता है उसी प्रकार जीवको सर्वज्ञ की परीक्षा करनी चाहिए। महाविदेहमें वर्तमानमें तीर्थंकर भगवान विराज रहे हैं उनके वचनोंमें जो संदेह करता

है वह महापापी है, वह भव्य नहीं किन्तु अभव्य है।

प्रश्न—सर्वज्ञने जो देखा होगा वही होगा तो फिर हमें क्या करना शेष रहा ?

समाधान :—इस जगतमें पूर्ण केवलज्ञान है; क्या उसका माहात्म्य तुझे आता है ? यह चैतन्य ऋद्धि तीन काल तीन लोकको जानता है, ऐसी ज्ञान दशा का माहात्म्य जो जानता है वह शरीर, विकार और अल्पज्ञता का माहात्म्य भूल जाता है। उस समय उसे आत्म-ज्ञान होता है, ऐसा सर्वज्ञके ज्ञानमें तथा उनकी वाणीमें भी आया है। तेरी आत्मा हमारे जैसा सर्वज्ञ होने योग्य है, वह वर्तमानकालीन रागद्वेष, तथा अल्पज्ञता जितना ही नहीं हैं किन्तु पूर्ण सर्वज्ञ शक्तिसे युक्त है, ऐसा कोई स्वीकार करे तो उसने सर्वज्ञ को माना कहा जाता है। केवलज्ञानी आत्मा का जो माहात्म्य नहीं जानता उसे सर्वज्ञ की श्रद्धा नहीं है, वह अभव्य है, पापी है। अरहंतदेव को तीन काल और तीन लोक का युगपत ज्ञान है। पूर्ण ज्ञान दशावाली एक आत्मा को देखकर उसका माहात्म्य आने पर ज्ञान होता है कि वैसी ही पर्याय को शक्ति रूप धारण करनेवाली मेरी भी आत्मा है। ऐसा निर्णय करनेवालेने ही 'सर्वज्ञने जो देखा होगा वैसा ही होगा'-इसे यथार्थरूपसे सच्चा स्वीकार किया है।

जो सर्वज्ञके गीत अर्थात् अपने ज्ञान स्वभाव की एकाग्रताके गीत नहीं गाता वह महापापी है।

हे नाथ ! आप शक्ति रूप सर्वज्ञ थे सो पूर्ण हो गए इसलिए स्वर्गमें देवियां भी आपकी महिमा गाती हैं। उन गानों को सुनने के लिए हरिण भी स्वर्गलोकमें गया है, आपके उपाधि रहित पूर्ण ज्ञान हैं ऐसे परमात्माके गीत देव और देवियाँ गाते हैं। मृत्युलोकके हरिण को लगा कि मैं यहां वे गीत नहीं सुन सकूंगा इसलिए वह उडकर चन्द्रलोकमें चला गया। लोगों को सर्वज्ञ परमात्मा के निर्णय करने का अवकाश नहीं है। इन्द्र सर्वज्ञके गीतों की महिमा करते हैं। जब हरिण ही सर्वज्ञके गीत सुनने चन्द्रलोक चला गया तब मनुष्य सर्वज्ञके गीत न गाए तो महापापी है, अभव्य है। जिसे तुम्हारे गीतों की महिमा नहीं आती वह श्रावक नहीं हो सकता। सर्वज्ञ पद की वाणी का रसिक ही इस पद की प्रतीति करता है उसे ही सम्यक्त्व होता है, सम्यक्त्वके बिना श्रावकत्व नहीं होता। जीव कमाई की बात हो तो रुचिपूर्वक सुनता है किन्तु जो आपके गुणों की स्तुति हृदयमें न लावे वह पापी है, अभव्य है। जो ज्ञान स्वभाव में एकाग्रता नहीं करते और रागमें लाभ मानते हैं वे सर्वज्ञ को नहीं मानते, वे महापापी हैं। कोई सर्वज्ञ को न माने और शंका करे, कि 'सर्वज्ञ भूतकाल को तो जानते हैं किन्तु भविष्य को नहीं जानते' ऐसा माननेवाला पापी है। आकाशमें १०८ बगुलों की पंक्ति चली जा रही हो उसे देखकर सूझता मनुष्य १०८ कहे

और कोई अन्धा पुरुष उसके साथ होड़ लगा कर कहे कि मैंने तो कम बगुले उड़ते देखे हैं, उसी प्रकार हे नाथ ! अज्ञानी सर्वज्ञ की वाणीमें शंका करता है, वह शंका, देखनेवालेके साथ अन्धेकी होड़की तरह है। हे नाथ ! एक समयमें तीन काल और तीन लोक आपने जान लिए हैं ऐसा जिनके विश्वास हो गया है वे निर्णय करते हैं कि आत्मा सर्वज्ञ होने योग्य है, अल्पज्ञ या रागद्वेष जितना नहीं है। ऐसा जो नहीं मानता वह सूझतेके साथ होड़ करनेवाले अन्धे की तरह मूर्ख है—ऐसा कहकर आचार्य अपनी निशंकता प्रकट करते हैं—श्रावक को सा विश्वास करना चाहिए। यहां नव तत्त्वोंमें मोक्ष तत्त्व की बात करी। सर्वज्ञ देव का बहुमान अपनी आत्मा का बहुमान आए बिना होता नहीं।

गाथा—२

एकोप्यत्र करोति यः स्थितमतिं प्रीतः शुचौ दर्शने ।
स श्लाघ्यः खलु दुःखितोऽप्युदयतो दुष्कर्मणः प्राणि मृत् ॥
अन्यैः किं प्रचुरैरपि प्रमुदितैरत्यंत दुरीकृत ।
स्फीतानंदभर प्रदामृतपथै मिथ्यापथ प्रस्थिते ॥ २ ॥

बाह्यमे प्रतिकूलता होते हुए भी जो सम्यग्दृष्टि है वह प्रशंसनीय है।

पहली गाथामें मोक्ष तत्त्व का महत्त्व बताया। मेरी आत्मा मुक्त होने की योग्यता वाली है, ऐसा निश्चय करना सम्यग्दर्शन

है। पूर्व कर्मके उदयसे भले ही उसे प्रतिष्ठा नहीं मिलती हो, वह भिखारी हो, सोनेके लिए जगह न हो, खानेके लिए अनाज न हो तथापि उसे विश्वास और ज्ञान है कि ये सब पूर्व कर्मके उदयसे है, किन्तु मेरी आत्मा आनंदकन्द है, सर्वज्ञ होने योग्य है। ऐसी श्रद्धा करनेवाले को भले ही वस्त्र, अनाज आदि प्राप्त न हों तथापि वह सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है। वर्तमानके संयोग प्रतिकूल होते हुए भी उसकी आत्मा अनुकूल है। प्रतिकूलता का उदय अवगुण नहीं है। गरीबी हो, रोग हो, अविवाहित हो या पुत्ररहित हो किन्तु ये सब अवगुण नहीं हैं क्योंकि ऐसा तो पूर्व कर्मके उदयसे हुआ है किन्तु यह अवगुण नहीं है। लोकमें कहा जाता है कि पुण्यके कारण चतुर कहलाते हैं, उनको आचार्य देव कहते हैं कि एक बार बात सुन! यह जो आत्मा का चैतन्य स्वभाव है उसीसे धर्म होता है, पुण्य पापमें धर्म नहीं है, ऐसी श्रद्धावाला अत्यन्त सन्तुष्ट होता है—मेरा स्वभाव पूर्णानन्द है ऐसा सन्तोष कर जो सम्यग्दर्शन धारण करे वह, भले ही अकेला हो, प्रशंसनीय है। अनुकूल संयोग तो पूर्व पुण्यके प्रतापसे मिलते हैं किन्तु अगर आत्मा की श्रद्धा नहीं की तो वे समाप्त हो जाने वाले हैं। वर्तमानमें कोई अविवाहित हो, और हाथसे खाना बना कर खाता हो तो भी यदि उसे आत्मा का भान है तो वह प्रशंसनीय है। भले ही उसका शरीर काला, कुबड़ा हो, वाणी अच्छी न हो, देखनेमें अच्छा न लगे किन्तु वह यदि आत्म-स्वरूपमें लीन है तो वह अच्छा है।

पुण्य-पापके भाव क्षणिक हैं, मेरा स्वभाव उपाधिरहित है, सर्वज्ञ पद अन्तरमें हैं, बाहरमें नहीं—ऐसी श्रद्धावाला व्यक्ति अकेला भी प्रशंसनीय है।

बाह्यमें अनुकूलता होते हुए भी जो मिथ्यादृष्टि है वह प्रशंसनीय नहीं है।

धनिक हो, प्रतिष्ठावान हो, बाल-बच्चोंवाला हो, जातिमें बड़ा हो तो श्रावक कहलाये ऐसा नहीं है। जो सम्यक्‌दर्शन, ज्ञानचारित्ररूपी मोक्षमार्गके राही नहीं हैं और वर्तमानकालमें शुभ कर्म-पुण्यमें एकत्व बुद्धि करके मिथ्यादृष्टि बनता है वह प्रशंसा करने योग्य नहीं है। कोई हीरा माणकके थालमें नाना प्रकारके मिष्टान्न खाता हो तो दुनिया उसे अच्छा कहती है किन्तु सर्वज्ञ देव द्वारा कथित आत्मा की प्रतीति न हो तो भले ही लोग उसके गुण-गान गाएं किन्तु उस अवस्था का कारण-पुण्य शीघ्र ही नष्ट होनेवाला है, क्योंकि वह पुण्य तो एक निश्चित अवधिके लिए है, उस अवधिके व्यतीत होते ही पुण्य-जनित संयोग नष्ट होने वाले हैं। अतः बाह्यके संयोगोंसे ही कोई सच्चा श्रावक नहीं बन जाता। पूर्व पुण्यके उदयसे कितनी ही अपार संपत्ति हो जाय किन्तु यह आत्मा सर्वज्ञ होने योग्य है, भगवान की जाति का है ऐसा जिसे विश्वास न हो, चाहे वह साधु ही क्यों न हो, उसके हजारों शिष्य अनुयायी हो अथवा बड़ा साहूकार हो तथापि प्रशंसनीय नहीं है। पूर्व पुण्य-जनित इष्ट संयोग भले ही न हो किन्तु अगर आत्मा की तरफ

दृष्टि है तो प्रशंसनीय है। शुभ रागसे धर्म होगा ऐसी विपरीत मान्यता वाला भले ही राजा हो अथवा साधु हो किन्तु वह अनुमोदन करने योग्य नहीं है। यहां सम्यग्दर्शनका मूल्यांकन किया जा रहा है। जिसे पूर्व पुण्यके उदयमें आनंद की अनुभूति है और वर्तमानमें पुण्यार्जनमें आनंद मानता है, इसलिए उसे आत्मामें आनन्द की अनुभूति नहीं है। जिन्हें पुण्यमें मिठास नहीं मिलता है उन्हें आत्मामें मिठास मिलता है, उनके संसार का शीघ्र अन्त होगा। अज्ञानी प्रश्न करता है कि संसारमें पुण्य के बिना कैसे चला जा सकता है ? उसे उत्तर देते हैं कि भाई, तुझे सर्वज्ञ भगवान का लघुनंदन बनना नहीं आता।

"भेद विज्ञान जग्यो जिन्हके घट, शीतल चित्त भयो जिम चन्दन।
केलि करैं शिवमारगमें जगमांहि जिनेसुरके लघु नन्दन॥"

सर्वज्ञ का पुत्र होने से सर्वज्ञ का उत्तराधिकार मिलता है। पुण्यवानके जब तक पुण्य का उदय है तब तक पैसा रहेगा फिर हवा हो जायगा। लघुनन्दन अर्थात् छोटा पुत्र। मुनि बड़े पुत्र है और सम्यग्दृष्टि सर्वज्ञ का छोटा पुत्र। वह स्वभावमें लीनता करके सर्वज्ञ पद प्राप्त करने वाला है।

भावार्थ :—पापके उदयसे दुखी मनुष्य, यदि सम्यग्दृष्टि है तो प्रशंसा का पात्र है किन्तु जो सम्यग्दर्शनसे परांमुख है, पुण्यसे धर्म मानता है वह मिथ्यामार्गमें है। उसको भले ही बाह्यमें पुण्य हो किन्तु वह प्रशंसनीय नहीं है; इसलिए सम्यग्दर्शन धारण करने का प्रयत्न

करना चाहिए। आत्मा प्रभुतासंपन्न है, जिसे उसकी प्रभुता का विश्वास नहीं है और अल्पज्ञता तथा रागद्वेष की प्रभुता मानता हो तो उसे भगवान की प्रभुता ज्ञात नहीं होती।

गाथा—३

बीजं मोक्षतरोर्दृशं भवतरोमिथ्यात्वमाहुर्जिनाः।
प्राप्तायां दृशि तन्मुमुक्षुभिरलं यत्नो विधेयो बुधैः॥
संसारे बहुयोनिजालजटिले भ्राम्यन् कुकर्मावृतः।
क्व प्राणी लभते महत्यपि गते काले हि तां तामिह॥३॥

ज्ञान स्वभावी आत्माका पूर्ण विश्वास ही पूर्ण पवित्र मोक्ष दशाका बीज है।

आचार्य पद्मनंदि कहते हैं कि आत्माकी पूर्ण अमृत आनन्द दशा मोक्षरूपी वृक्ष है, उसका बीज सम्यग्दर्शन है। जैसे आम का बीज उसकी गुठली ही होती है लेकिन आकफल नहीं होता उसी प्रकार परमानंद दशा, अरागी, वीतरागी, विज्ञान दशाका बीज सम्यग्दर्शन है। राग भाव छोड़कर आत्माकी निर्विकल्प श्रद्धा सम्यक्दर्शन है। ऐसा सम्यक्दर्शन होनेके पश्चात् श्रावकत्व होता है। मोक्षरूपी वृक्षका बीज देव, शास्त्र, गुरुकी कृपा या उनका निमित्त या पुण्य-पाप नहीं है अपितु सम्यग्दर्शन ही है। स्वयं ही अपना सम्यग्दर्शन प्रकट करे तो देव-गुरु-शास्त्र निमित्त कहलाते हैं। सम्प्रदाय या कुलमें जन्म लेनेसे ही कोई

दिगम्बर नहीं बन जाता। आत्माकी पूर्ण दशा रूप मोक्षका बीज ही बोधि बीज है।

तत्त्वकी विपरीत मान्यता नरक और निगोदका बीज है।

नरक और निगोदका बीज मिथ्यात्व है। आत्म-स्वभाव से विपरीत मान्यता अनन्त संसारका कारण है। पुण्य-पाप-भाव संसारके वास्तविक कारण नहीं हैं, सम्यग्दृष्टिके भी पुण्य-पाप भाव होते हैं लेकिन वे संसारके बीज नहीं हैं। सर्वज्ञ द्वारा कहे हुए तत्त्वोंकी उल्टी मान्यतासे जीवके चौरासी लाख भव होते हैं। इसलिए अगर वर्तमानमें जीव मंदकषायी होगा तो उसे देवगति प्राप्त होगी किन्तु तत्पश्चात् वह नरक निगोदमें जायेगा, ऐसा त्रिलोकीनाथ कहते हैं, यह मेरा अपना कथन नहीं है। पूर्ण तत्वकी श्रद्धा केवलज्ञानका बीज है, जो ऐसी श्रद्धा नहीं करता वह भले ही मुनि हो लेकिन उसे सर्वज्ञकी भक्ति करना नहीं आता।

जीव भव्य है ऐसा दिव्यध्वनिमें आवे तो उसकी महान् प्रतिष्ठा है और जीव अभव्य है ऐसा आवे तो उसका महान् अपमान है।

आत्माकी पूर्ण दशा प्रकट करनेके अभिलाषी जीवोंको सम्यग्दर्शन प्रकट कर उसके रक्षार्थ अनेक प्रयत्न करने चाहिए। प्रतिष्ठा या धन-सम्पत्ति, आवे या जावे उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

"लही भव्यता मोटुँ मान;
कोण अभव्य त्रिभुवन अपमान।"

यदि सर्वज्ञ की वाणीमें ऐसा आवे कि यह जीव सम्यक्-दृष्टि है तो यह उसके लिए महान सम्मान है। इस सम्मानके सिवा और कैसा मान चाहिए? उनकी वाणीमें यदि यह आवे कि यह जीव मुक्तिके योग्य नहीं है तो यह उसका बड़ा भारी अपमान है। इससे बढ़कर और क्या अपमान होगा? सांसारिक सामग्री-माया, संपत्ति, परिवार आदि भले ही मिल जायं वह तेरे स्वभावके विपरीत है इसलिए भले ही पूर्व पुण्यके उदय से ढेर सारी सम्पत्ति मिल जाय किन्तु ये सब आत्म-स्वभावके लिए प्रतिक्षण अपमानजनक ही हैं। पूर्व पापका उदय होते हुए भी तू भव्य है, ऐसा विश्वास हो तो तेरा सम्मान है इसलिए सम्यग्दर्शन प्राप्त कर उसकी रक्षा करनी चाहिए। तुझे अपने आत्म-स्वभावकी प्रभुता नहीं आती और पुण्यकी प्रभुता आती है तो तूं पुण्यकी अभिलाषा करेगा यह तेरे स्वभावका अपमान है। बाह्यमें प्रतिकूलता होते हुए भी स्वयं आत्मा है ऐसा भान होवे तो तेरा सम्मान ही है, इसलिए सम्यग्दर्शन की प्राप्तिका प्रयत्न करना चाहिए। क्योंकि नरक, तिर्यंच आदि अनेक प्रकार की योनि वाले संसारमें यह जीव अनादि कालसे भ्रमण कर रहा है। क्या चींटी, लट आदिकी पर्यायोंमें सम्यग्दर्शन होगा? नहीं; वर्तमानमें पंचेन्द्रिय जीवोंकी हिंसा की जाती है, मछली

मारें, बन्दर मारें आदि भाव तीव्र कषायसे होते हैं ऐसे परिणाम इस कालमें बहुत किए जाते हैं इसलिए इस कालमें सम्यग्दर्शन की प्राप्ति दुर्लभ है। अतः उसकी प्राप्तिके लिए निरंतर प्रयत्न करने चाहिए।

(श्रावण बदी १४, मंगलवार, ता० १६-८-५५)

आत्मभान पूर्वक मुनिपणा अंगीकार न किया जा सके तो श्रावक बनना चाहिए।

इस 'पद्मनंदि पंचविंशतिका' शास्त्रके पच्चीस अधिकारमें से ७ वें अधिकारमें श्रावकके गुणोंका वर्णन किया गया है। श्रावकको प्रथम सम्यक्‌दर्शन प्राप्त करना चाहिए। आत्मा आनन्द-कन्द है, ऐसी श्रद्धा करनी चाहिए और स्वभावमें से मेरी पूर्ण दशा प्रकट होगी ऐसा निर्णय करना चाहिए। सम्यग्दर्शन उत्पन्न होना ही जैन-कुलमें जन्म लेना है। आत्मा पूर्ण ज्ञान और आनन्द स्वभावी इस भान सहित वर्तमान रागादिमें हेय भाव वर्तते ही सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेके पश्चात् उसके रक्षार्थ प्रयत्न करने चाहिए। आत्मा शुद्ध चैतन्य स्वभावी है, उसकी तरफ दृष्टि करके आत्म-भानपूर्वक नग्न दिगम्बर बनना चाहिए। मुनिधर्म अंगीकार न किया जा सके तो आत्मा की आंतरिक पुरुषार्थ की पर्याय श्रावकके अनुरूप प्रकट करनी चाहिए।

गाथा—४

सम्प्राप्तेऽत्र भवे कथं कथमपि द्राधीयसाऽनेहसा।
मानुष्ये शुचिदर्शने च महता कार्यं तपो मोक्षदम्॥
नो चेल्लोकनिषेधतोऽथ महतो मोहादशक्ते रथ।
सम्पद्यते न तत्तदा गृहपतां षट्कर्म योग्यं व्रतम्॥४॥

दुर्लभ मनुष्य भवमें सम्यग्दर्शनपूर्वक श्रावकके षट्कर्म करने चाहिए।

देखो, क्या कहते हैं? मेरी आत्मा परमात्मा है, ऐसी दृष्टि करनी चाहिए। अनादिसे अनंतकाल व्यतीत हो गया उसमें मनुष्य भव अनंतकालमें मिलता है। व्यापार, पैसा, जवाहरात, आदि मिलना दुर्लभ नहीं कहलाता। वे तो अनेक बार मिल गए हैं। इस संसारमें पुण्य परिणामसे मनुष्य जन्म मिला है। किन्तु पुण्य पाप मेरे नहीं हैं, शरीर मेरा नहीं है, मैं ज्ञान स्वभावी हूं—ऐसा सम्यग्दर्शन प्राप्त करना चाहिए। ऐसी प्रतीतिवाले को मुनिदशा अंगीकार करनी चाहिए। यह शरीर क्षणभंगुर है ऐसा विचार कर केवलज्ञान का निकट कारण चारित्र दशा प्रकट करनी चाहिए। उस अन्तर विकसित अवस्थामें बाह्य वस्त्र पात्र छूट कर दिगम्बर दशा हो जाती है। ऐसा होनेमें यदि वर्तमानमें लज्जा आती हो और तत्परिणाम स्वरूप मुनिपणा न अपनाया जा सके अथवा आनन्द की उर्मियाँ आवें—ऐसा पुरुषार्थ न हो और चारित्र मोहके उदयसे

अस्थिरता—निर्बलता हो जिनके कारण मुनिपणा न लिया जा सके तो श्रावकके षटकर्म अवश्य करने चाहिए।

धर्मात्मा को जिनेन्द्र भगवान के प्रति बहुमान,
विनय और पूजा का भाव आता है।

देव पूजा :—आत्मा ज्ञानानंद स्वभावी है ऐसी दिव्य शक्ति की जिसे प्रतीति हुई हो उसे जबतक पूर्ण दशा प्राप्त न हो तबतक जिनेन्द्र देव की पूजन करनी चाहिए। सम्यक्त्वी श्रावक को उनकी पूजा करने के भाव आते है। मुनि भी भाव पूजा करते है। श्रावक सेवक बन कर पूजा करते हैं। जिसके अंतरंगमें ज्ञान स्वभाव का भान है वह कहता है—हे नाथ, तेरे विरहमें अनंतकाल बीत गया। हे प्रभु अब कृपा करो और मेरे जन्म-मरण का अन्त कर दो। जन्म-मरण का अन्त अपनी आत्मासे ही होता है किन्तु अपूर्ण अवस्थामे भगवान की पूजा का भाव होता है। स्वयंभू स्तोत्रमें समंतभद्र आचार्य अनेक प्रकारसे स्तुति करते हैं। जिसे आत्मा का भान है उसे पूर्णदशा प्राप्त भगवान की स्तुति करने के भाव आते हैं। "हे नाथ! आपको पूर्ण आनंद मिल गया, आपमें अल्पज्ञता और विकार नहीं रहे, अब करुणा करें।" ऐसे नम्र वचन निकले बिना नहीं रहते। श्री ऋषभदेव भगवान की स्तुतिमें

कहा है—"हे नाथ, आप मुनि बने और तत्पश्चात् मोक्ष पधारे तब कहते है कि आपकी शोभा ही सर्वत्र व्याप्त हो रही थी। नदियों की भी कलकल ध्वनि आपके वियोगमें हो रही है तो फिर हम रोवें तो इसमें क्या आश्चर्य ?" इसी प्रकार भक्तों का रोमांच भक्तिमें उल्लसित होता है। सम्यग्दृष्टि को साक्षात् परमात्मा और उनकी प्रतिमाके प्रति बहुमान आए बिना नहीं रहता। स्त्री की मृत्यु हो जाने पर अज्ञानी पति उसकी फोटो देखकर उसे याद करता है। किसी की प्रिय स्त्री मर गई थी, उसने मान लिया कि वह मरकर उसीके घरमे कामधेनु बनी है। उसने उस गाय की मृत्यु होने पर उसकी स्मृतिमें अठारह हजारमें मन्दिर बनाया और इस प्रकार याद करने लगा—'हे माता, मैं तुझे भूल गया था, मैं तुझे पहचान नहीं सका, मन्दिरमें कामधेनु की मूर्ति रखना तो मूढता है, भ्रांति है। जिससे प्रेम है उसके प्रति बार २ प्रेम-भाव आए बिना नहीं रहता। जिसे अपनी माता के प्रति प्रेम रहता है वह चाहता है कि मेरी माँ का नाम रहना चाहिए। अपने दिवंगत पिताजी की लोग याद करते हैं। उसी प्रकार धर्मी को भगवान तीर्थंकर के विरहमें उनकी प्रतिमाके प्रति

२

शुभ राग आए बिना नहीं रहता। वह समझता है कि देव पूजा है सो पुण्य है। जिस घरमें भगवान की स्तुति, भक्ति नहीं की जाती वह घर कसाईखाने के समान है।

जो श्रावक छः आवश्यक कर्म नहीं करता उसके गृहस्थाश्रम को धिक्कार है।

आचार्य पद्मनन्दिने श्रावकाचार की १५ वीं गाथामें कहा है कि जो मनुष्य जिनेन्द्र भगवान की भक्ति नहीं देखता तथा भक्तिपूर्वक उनकी पूजा, स्तुति नहीं करता उस मनुष्य का जीवन निष्फल है तथा उसके गृहस्थाश्रम को धिक्कार है। निर्ग्रन्थ वनवासी मुनि भी कहते हैं कि उन्हें धिक्कार है। आगे गाथा १६-१७ में कहा है कि "भव्य जीवों को प्रातःकाल उठकर श्री जिनेन्द्रदेव तथा गुरुके दर्शन करना चाहिए तथा भक्तिपूर्वक उनकी वन्दना स्तुति करनी चाहिये तथा धर्म शास्त्र सुनने चाहिए। तत्पश्चात् गृह कार्य करने चाहिए। गणधरादि महान् पुरुषोंने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार पुरुषार्थोंमें सर्व-प्रथम धर्म का निरुपण किया तथा उसको मुख्य माना है।"

आगे गाथा १८ वीं में कहा है कि जिस केवलज्ञान रूपी नेत्रसे समस्त पदार्थ हाथकी रेखाकी तरह प्रकट रूपमें दृष्टि-गोचर होते हैं ऐसा वह ज्ञानरूपी नेत्र निर्ग्रन्थ गुरूकी कृपासे प्राप्त होता है। इसलिए ज्ञानके आकांक्षी मनुष्योंको भक्तिपूर्वक निर्ग्रन्थ गुरूकी सेवा, वन्दना आदि करनी चाहिए। आगे

गाथा २० में आचार्यने कहा है कि हमेशा स्वाध्याय करना चाहिए। "जो मनुष्य उत्तम तथा निष्कलंक गुरु द्वारा रचित शास्त्र नहीं पढ़ते वे मनुष्य विद्वान होते हुए भी अन्धे माने जाते हैं।" यह कथन अज्ञानी द्वारा कथित या रचित शास्त्रके सम्बन्धमें नहीं है। जो शास्त्र नहीं पढ़ते, अध्ययन नहीं करते वे अन्धे हैं। अतः यथाशक्ति स्वाध्याय करना चाहिए। किन्तु स्वाध्याय ज्ञानी पुरुषों द्वारा कथित शास्त्रोंका ही करना चाहिए।

आगे गाथा २१ वीं में आचार्यने कहा है कि जो मनुष्य गुरूके पास रहकर शास्त्र श्रवण नहीं करते हैं और ज्ञानको हृदय में धारण नहीं करते उनके कान और मन नहीं है ऐसा मैं मानता हूं। जैसे कीड़ीके कान और मन नहीं है उसी प्रकार उनके नहीं है। कान और मन होते हुए भी अगर उनका सदुपयोग न किया तो न होनेके समान ही है।

गाथा २२ वीं में कहा है कि धर्मात्मा श्रावकोंको देशव्रतके अनुसार संयम धारण करना चाहिए ऐसा करने से व्रत सफल होते हैं। इच्छा की कमी करनी चाहिए व दान देना चाहिए।

गाथा ३१ वीं में कहा गया है कि "धर्मात्मा गृहस्थोंको मुनि आदि उत्तम पात्रोंको अपनी शक्तिके अनुसार दान अवश्य देना चाहिए क्योंकि दान दिए बिना गृहस्थाश्रम व्यर्थ है।

गाथा ३४ वीं में आचार्य कहते हैं कि जो समर्थ होते हुए भी आदरपूर्वक यतीश्वरोंको दान नहीं देते वे मूर्ख अपने

आगामी जन्ममें प्राप्त होने वाले सुखका नाश करते हैं। राग घटाकर मुनि आदि सत्पात्रोंको दान देना चाहिए।

इस ग्रन्थके श्रावकाचार की गाथा ७ वीं इस प्रकार है—

देव पूजा गुरु पास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानञ्चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिनेदिने ॥

यहां आचार्य इन कामोंको "दिने-दिने" करनेके लिए कहते है। जिस प्रकार खाने-पीने आदिके कार्य प्रतिदिन किए जाते हैं उसी प्रकार प्रतिदिन दान देना चाहिए।

श्रावकाचार की गाथा ३५ में कहा गया है कि जिस गृहस्थाश्रममें दान नहीं दिया जाता वह गृहस्थाश्रम पत्थरकी नावके समान है और उस गृहस्थाश्रम रूपी पत्थरकी नावमे बैठने वाले निश्चय ही संसाररूपी समुद्रमें डूबते है। जैसे पत्थरकी नाव डूबती है वैसे ही वे भी डूब जाते है, अर्थात् संसारमे भ्रमण करते रहते है।

आगे गाथा ३६ में आचार्य कहते हैं कि जिसे धर्म-भावना प्रकट हुई उसे धर्मीके प्रति प्रीति होनी चाहिए। धर्म धार्मिकों बिना नहीं होता। जो मनुष्य साधर्मी सज्जनोंसे शक्तिके अनुसार प्रेम नहीं करते उनकी आत्मा प्रबल पापसे ढकी हुई है तथा वे धर्मसे विमुख है तथा धर्मके अभिलाषी भी नहीं है। इसलिए भव्य जीवोंको साधर्मी सज्जनोंके साथ अवश्य प्रेम करना चाहिए।

भावार्थः—इस संसारमें इस जीवका प्रथम तो निगोदादिक पर्यायोंसे निकलना अत्यन्त कठिन है। फिर वहांसे निकल भी जाय तो पृथ्वीकाय, जलकाय आदि एकेन्द्रिय पर्याय पावे। एकेन्द्रियमें अनन्त काल व्यतीत हुए बाद कठिनतासे कौआ आदि त्रस पर्यायों में उत्पन्न होता है। फिर त्रस पर्यायमें से निकलकर मनुष्य पर्यायकी प्राप्ति कठिन है, और अगर मिल भी जाय तो भगवान द्वारा कहे हुए तत्त्वका श्रवण-गोचर होना कठिन है। श्रवण-गोचर हो जाय तो सम्यग्दर्शन होना कठिन है और सम्यग्दर्शन हो जाय तो उसकी रक्षा करनेमें जीव प्रमाद करता है। इससे सम्यग्दर्शन हुआ न हुए के समान है। इसलिए आचार्य उपदेश देते हैं कि अगर सौभाग्यसे मनुष्य भव और सम्यग्दर्शन प्राप्त हो तो उत्तम पुरुषोंको प्रमाद भाव छोड़कर तप करना चाहिए। तप अर्थात् मुनिपण ग्रहण करना चाहिए। अगर अपनी अस्थि-रता या नग्नताकी लज्जाके कारण मुनि न हो सके तो श्रावकके छः कर्म अवश्य करने चाहिए; किन्तु मनुष्य जन्म और सम्यग्दर्शन व्यर्थ नहीं खो देना चाहिए।

अब बारह व्रतोंका वर्णन किया जाता है। सम्यग्दर्शनपूर्वक षट्कर्म और बारह व्रत होते हैं और वे व्रत गृहस्थोंके लिए पुण्यके कारण हैं ऐसा आचार्य बताते हैं।

गाथा—५

दृङ्मूलव्रतमष्टधा तदनु च स्यात्पञ्चधाणुव्रतं ।
शीलाख्यं च गुणव्रतं त्रयमतः शिक्षाश्चतस्त्रः पराः ॥
रात्रौ भोजन वर्जनं शुचिपटात्पेय पयः शक्तितः ।
मौनादिव्रतमप्यनुष्ठितमिदं पुण्याय भव्यात्मनाम् ॥५॥

श्रावकको आत्मभानपूर्वक बारह व्रत करनेका शुभ राग आता है।

देखो, पद्मनन्दि आचार्य स्पष्ट कहते है कि धर्मी जीवके १२ व्रत पुण्यकारक हैं, अशुभसे बचने के लिए पुण्य भाव आते हैं। वे पुण्य परिणाम हैं किन्तु धर्म नहीं है। सम्यग्दृष्टिके मद्य, मांस, मदिरा, पांच उदम्बर फल छोड़ने का भाव होता है, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्यादि पांच अणुव्रत धारण करना और दिग्व्रत आदि गुणव्रत तथा देशावकाशिक आदि चार शिक्षाव्रतोंके पालन करना तथा रातमें स्वाद्य आदि चार प्रकारके भोजन का त्याग करना, स्वच्छ कपड़ेसे छाना हुआ पानी पीना, तथा शक्तिके अनुसार मौन आदि व्रत धारण करना इस प्रकार ये श्रावकके व्रत हैं। भली प्रकार किए हुए व्रत भी पुण्यके कारण हैं इसलिए धर्मात्मा श्रावकोंके व्रत का पालन आत्माके भानपूर्वक होता है। आजकल मुख्य बात तो उड़ गई है और व्यवहार कथन को पकड़ लेते हैं। साथमें सम्यग्दर्शन हो तो व्रत सच्चे व्रत कहलाते हैं अन्यथा नहीं।

अशुभसे बचने के लिए ऐसा शुभराग आता है। चरणानुयोगमें उसका पालन करो ऐसा कहते हैं।

देशव्रती श्रावक इस प्रकार व्रतों को धारण करता है।

गाथा—६

हन्ति स्थावर देहिनः स्वविषये सर्वांस्त्रसान रक्षति।
ब्रूते सत्यमचौर्यवृत्तिमवलां शुद्धां निजां सेवते॥
दिग्देश व्रत दण्ड वर्जनमतः सामायिकं प्रौषधं।
दानं भोगयुगं प्रमाणमुररीकुर्याद् गृहीति व्रती॥ ६॥

श्रावक को त्रस जीवो की रक्षा का भाव आता है।

व्रती श्रावक अपने प्रयोजनके लिए पृथ्वी आदि स्थावर जीवों की हिंसा करता है अर्थात् मारने का भाव होता है, दूसरे को मार सकता हो ऐसी बात नहीं है। मुनि अवस्था नहीं है इसलिए श्रावक अवस्थामें पांच कायके स्थावर जीवोंको मारने का भाव आता है तथा द्विइन्द्रियसे संज्ञी पंचेन्द्रिय त्रस जीवों की रक्षा करता है, पर जीवों की रक्षा कर सकता हो यह बात नहीं है। किन्तु उनकी रक्षा का भाव आता है इसलिए उनकी रक्षा करता है ऐसा चरणानुयोगमें कथन आता है, मेरा स्वभाव वीतरागी है, यह अन्तर्दृष्टि है, राग की उत्पत्ति हिंसा है, इतना होते हुए भी इतना जानते हुए भी बारह व्रत का, श्रावकावस्थामें, राग आए बिना नहीं रहता।

त्रस जीवों की रक्षा करता है अर्थात् त्रस जीवों को मारने का भाव नहीं करता—शास्त्र का कथन समझना चाहिए। आचार्य आगे कहेंगे कि मेरेमें सर्वज्ञ शक्ति की प्रतीति है जो, थोड़ा रागद्वेष है उसे भी छोड़ना चाहता हूं इसलिए उसे कर्मजनित कह देते हैं अपने आत्म स्वभावसे हमें विकार नहीं होता किन्तु निर्बलतासे हुए विकार सबलता द्वारा कर्मकृत कह दिए जाते हैं इसलिए अपेक्षा समझनी चाहिए। श्रावकके सत्य बोलने, अचौर्य व्रत पालन करने का भाव होता है, परस्त्री गमन का भाव नहीं होता किन्तु अपनी स्त्रीके प्रति राग नहीं छूटता। वह दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थदण्ड व्रत का पालन करता है।

श्रावक आत्म-स्वभावमें स्थिर रहने का प्रयोग करता है।

वह सामायिक करता है। सामायिक केवलज्ञान और चारित्र प्रकट करने का प्रयोग है। जैसे व्यापारमें अभ्यास किया जाता है, परीक्षा करने के लिए लड़के को दुकान पर बैठाते हैं उसी प्रकार धर्मात्मा भी अभ्यास करता है। आत्मा आनन्द-कन्द स्वरूप है, सामायिकमें दो घड़ीके लिए उस स्वरूपमें स्थिर रहने का श्रावक अभ्यास करता है। स्वरूपमें स्थिरता का २४ घण्टेके लिए अभ्यास करना प्रौषधोपवास है। शरीर छूटते समय अन्तिम अभ्यास सल्लेखना है। आत्मा देह रहित है ऐसी दृष्टि रख कर दो घड़ीके लिए प्रयोग या अभ्यास करना सामायिक है, अधिक अभ्यास करना प्रौषधोपवास है। एक आसन पर पांच बार सामायिक मात्र करना सामायिक नहीं है

और मात्र भोजन न करना प्रौषधोपवास नहीं है। श्रावक आत्माके भानपूर्वक प्रौषध का अभ्यास करता है।

गृहस्थ श्रावक सच्चे मुनि, साधर्मी, संत आदि को दान देने का भाव करता है। सावर्मी भाई की सेवा करने का भाव आवे तो श्रावकत्व सच्चा कहलाता है श्रावक भोगोपभोगमें भी परिमाण करता है। स्वरूप की मर्यादा ध्यानमें आवे इसलिए विशेष राग नहीं हो और राग घटे तभी श्रावकत्व सुशोभित होता है अन्यथा नहीं।

गृहस्थके देव पूजा आदि गुण हैं उनमें दान सबसे उत्तम गुण है, यह आचार्य बतलाते है।

गाथा—७

देवाराधन पूजनादि बहुषु व्यापार कार्येषु च।
पुण्योपार्जन हेतुषु प्रतिदिनं संजाय मानेष्वपि॥
संसारार्णवतारणे प्रवहणं सत्पात्रमुद्दिश्य यत्।
देशव्रत धारिणो धनतो दानं प्रकृष्टो गुणः॥ ७॥

लोभ रूपी कुएँ की कन्दरामें गिरे हुए जीवोके कल्याणार्थ मुनि दान का उपदेश देते हैं।

पद्मनन्दि आचार्य नग्नदिगम्बर [illegible] हैं, संसारी जीव लोभरूपी कन्दरामें गिर गए हैं उन पर करुणा करके उनके उद्धारके लिए आचार्यने दान अधिकार लिखा है। दान अधि-

कार की चौथी गाथामें कहा है—"अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर तथा जीवन, यौवन आदिके स्वप्नवत तथा इन्द्रजाल सदृश होते हुए भी जो मनुष्य लोभरूपी कुएँ की कन्दरामें गिरे हुए है उनके उद्धारके लिए करुणा करके कहता हूं।" लोभी जीव लोभ-रूपी खाईमें गिर गए हैं उनपर आचार्य करुणा करते हैं। वे कहते हैं कि हमें क्या ? किन्तु लोभमें फँसे हुए जीवोंके लिए दान अधिकार लिखते हैं। लोग अपनी सन्तानके विवाहमें रुपया खर्च करते हैं तो मन्दिर आदिके लिए भी धन खर्च करना चाहिए किन्तु लोभी जीव थोड़ा-सा भी दान नहीं करता।

जिनेन्द्र देव की पूजा आदि कर्त्तव्योंमें दान उत्तम कार्य है।

धनवान और धर्मात्मा श्रावक श्रेष्ठ पुण्य का संचय करने वाले जिनेन्द्र देव की पूजा, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, आदि अनेक उत्तम कार्य सर्वदा करते रहते हैं। स्वभाव पर दृष्टि है इसलिए दानके शुभ राग को संसार समुद्रसे पार करने के लिए जहाज कहा है इसलिए श्रेष्ठ मुनि आदि सत्पात्रों को दान देना चाहिए। दान धर्मात्मा का, श्रावक का उत्तम गुण है।

जो लोभी दानमें लक्ष्मी का उपयोग नहीं करता
वह कौएसे भी हलका है।

दान अधिकारमें कौए का दृष्टान्त आया है। खिचड़ी पकाते समय जो जलकर तपेलीमें चिपक जाती है उसे कौआ अकेला नहीं खाता किन्तु दूसरे कौओं को बुला कर खाता है। दान अधिकार की ४६ वीं गाथामें कहा है—

"जो लोभी पुरुष भोग तथा दान रहित धनरूपी बन्धनसे बंधा हुआ है उस कंजूस का जीवन इस लोकमें व्यर्थ है क्योंकि उसकी अपेक्षा तो वह कौआ ही अच्छा है जो ऊँचे स्वरसे अन्य कौओं को बुलाकर उनके साथ भोजन करता है।" हे धनाढ्य! इसी तरह आत्माके गुण जले और तेरी शान्ति जल गई, जिसके फलसे कभी पुण्य बंधा और उसके परिणामसे धन मिला। अगर ऐसा धन अकेला खाएगा तो कौएसे भी गया बीता हो जायगा इसलिए राग कम करके दान कर, नहीं तो कौएसे भी हलका हो जाएगा। यह बात वनवासी सन्त कहते हैं। मनुष्य भव और पैसा अधिक समय नहीं रहेगा इसलिए सभी गुणोंमें दान उत्तम गुण है।

(बुद्धवार ता० १७-८-५५)

ज्ञानी का दान दृष्टिपूर्वक राग कम करने के लिए है।

आत्मा का स्वभाव परमानन्द है, उसपर दृष्टि रख कर श्रावक धर्म का विकास होता है। उसमें देव पूजा की अपेक्षा दान का विशेष भाव आता है। गृहस्थ धर्ममें दान उत्तम गुण है। आनन्द स्वभाव पर दृष्टि होते हुए भी पूर्ण आनन्द दशा प्रकट न हो तबतक धर्मीके देव पूजा आदि का राग आता है। उसके दानमें यश या सन्मान प्राप्ति की इच्छा नहीं रहती है। किसान दूसरों को दिखाने के लिए धूळमें अनाज नहीं डालता। धरतीके भीतर बीज बोया होगा-तो मिट्टी को चीरकर फसल

उगेगी। कोई मूर्ख दूसरों को दिखाने के लिए धूल पर ही बीज डाल दे तो बरसात की एक ही बौछारमें बीज बह जायगा; धरतीके भीतर बीज बोया जाय तो फसल होगी इसी प्रकार धर्मी जीव को दान का भाव दूसरों को दिखाने के लिए अथवा यश प्राप्तिके लिए नहीं होता। किसान को सन्तोष है और ज्ञान है कि बीज पर मिट्टी पड़ी है तथापि अंकुर फूटकर बाहर निकलेंगे उसी प्रकार धर्म का मूल गहरे वट वृक्ष की तरह है। आत्मा आनन्द-कन्द है उसके स्वभाव पर दृष्टि रखने वाले को अन्तमें केवलज्ञान प्रकट होता है; उस जीव को दान का भाव होता है। उसके ध्रुव स्वभावके अवलंबनसे अशुभ राग टलता है। अज्ञानी का शुभ छाजाके पौधे की तरह है जो कि अल्प-काल की निश्चित अवधि बाद सूख जायगा।

ज्ञानीके दानादि शुभ राग संसारसे पार होने के लिये जहाज के समान है।

जिसे आत्मा का भान हुआ हो ऐसे धर्मी को धर्मात्मा के लिए दान करने का भाव आए बिना नहीं रहता। उसके भाव दुनियाके हिसाबसे नहीं अपितु आंतरिक ध्रुव स्वभावके साथ हैं। एक किसानने अनाज बोया। उसके एक बीजके १६ भुट्टे निकले थे। उसी प्रकार आत्माकी दृष्टिमें सम्पत्ति पड़ी हुई है किन्तु पूर्ण वीतरागता नहीं हुई इसलिए देवगुरु शास्त्र की प्रभावनाके लिए दान देता है वह दुनिया को दिखाने के लिए नहीं। अज्ञानी दस बीस हजार देता है तो नाम की

वक्ती लगाता है और सन्मान को इच्छा करता है। देव पूजा आदि की भक्ति भी दान ही है उनमें पैसा लगाने का दान भाव बड़ा है, शुभ है।

आत्मभानपूर्वक अशुभ दूर हुआ इसलिए दान संसारसे पार होने के लिए जहाज के समान है।

गाथा—८

सर्वोवांछति सौख्यमेव तनुभृतन्मोक्षएव स्फुटं।
दृष्टादित्रय एव सिध्यति स तन्निर्ग्रंथ एव स्थितम्॥
तद्वृत्तिर्वपुषोऽस्य वृत्तिरशनात्तद्दीयते श्रावकैः।
काले क्लिष्टतरेऽपि मोक्ष पदवी प्रायस्ततो वर्तते॥ ८॥

सभी जीव सुख की इच्छा करते है; वास्तविक सुख मोक्ष दशामे है।

इस गाथामें निर्ग्रंथ मुनि को दान देने का कथन है। स्त्री पुत्रके लिए कोई वस्तु लाना अशुभ की भक्ति है। आत्मा ज्ञानानन्द स्वभावी है, ऐसा भान ही निश्चय भक्ति है, देव, गुरु शास्त्र की भक्ति शुभ भक्ति है। श्रावक को धर्मात्माके प्रति भक्ति आती ही है। "धर्म धर्मीके बिना नहीं रहता।" इसलिए धर्मात्मा के प्रति श्रावक को प्रेम होता ही है। कल्याण मार्गके राही जीव को दान का उत्साह आए बिना नहीं रहता। सभी जीवों की यह इच्छा रहती है कि सुख मिले, किसी को दुख पाने की इच्छा नहीं रहती। वास्तविक सुख मोक्षमें है न कि धन-दौलत और

प्रतिष्ठा में। पूर्ण निर्मल दशामें सुख है यह निर्णय करना चाहिए। भाइयोंमें, स्त्रीमें, कुटुम्बमें, ग्राममें, अथवा पुण्य पापमें सुख नहीं है। वास्तवमें तो मोक्ष अवस्थामें ही सुख है।

मोक्ष दशा का कारण मुनियों का मोक्ष मार्ग है; उसके स्थिर रहने में आहार-दान परंपरा कारण है।

श्रावकों को सत्पात्रके लिए दान देना चाहिए। मोक्ष दशाकी प्राप्ति—पूर्ण आनंदकी प्राप्ति-सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रसे होती है। आत्मा पूर्णानंद स्वभावी है, ऐसी श्रद्धा सम्यग्दर्शन है, ऐसा ज्ञान सम्यग्ज्ञान है, उसमें लवलीनता सम्यक्चारित्र है। ऐसे रत्नत्रय की प्राप्ति निर्ग्रंथ अवस्थामें होती है। ऐसे निर्ग्रंथ मुनि को दान देने का प्रकरण चल रहा है। धर्मात्मा जीव को अन्तर्दृष्टि प्राप्त है इसलिए वह मोक्ष का साधक है। सम्यक्-दर्शन ज्ञान-चारित्र की एकता निर्ग्रंथ अवस्थामें होती है। वह निर्ग्रंथ अवस्था शरीर रहे तो रहे यह निमित्त का कथन है। धर्मी का लक्ष्य अन्य धर्मात्माके प्रति जाता है। निर्ग्रंथ मुनि का शरीर चारित्रमें निमित्त होता है। अपने ज्ञान स्वभावसे सम्यक्दर्शन ज्ञान-चारित्र हो तो शरीर निमित्त कहलाता है। धर्मी की दृष्टि स्वभाव पर है। उग्र दशामें साधना शरीर द्वारा हो वह निमित्त है। नैमित्तिक दशा प्रकट की इसलिए शरीर निमित्त कहलाता है। शरीरमें निमित्त अन्न है, मुनिके वस्त्र-पात्र नहीं होते ऐसे मुनिके शरीर टिकनेमें अन्न निमित्त है। अन्न खावे तो शरीर टिके, ऐसा नहीं है किन्तु शरीर रहे तो

अन्न निमित्त है और अन्न श्रावक द्वारा दिया जाता है। धर्मी जीव को धर्मात्माके प्रति उल्लास आए बिना नहीं रहता।

धर्मी "सच्ची सगाई साधर्मीकी" मानता है। स्त्री, पुत्र तो लूटने, खाने वाले हैं। वे कहते हैं कि हमारे लिए दुकान, धन, मकान आदि एकत्रित करते जाओ किन्तु ये सब पापके निमित्त हैं। (यहाँ धर्मात्माका धर्मीके लिए दान और प्रेमका प्रकरण चल रहा है) धर्मात्माको श्रावकों द्वारा आहार प्राप्त होता है। लोभी श्रावककी बात नहीं है। इस दुषम कालमें मोक्ष पदकी प्रवृत्ति प्रायः गृहस्थ द्वारा दिए हुए आहार दानादिसे हो रही है, प्रायः कहनेका तात्पर्य व्यवहारसे है। मोक्ष पद निश्चयसे तो आत्माके आश्रयसे होता है किन्तु आहार मुनिके शरीरमें निमित्त है और उसमें श्रावकोंका आहार दान निमित्त है इसलिए श्रावकोंसे मोक्ष पदकी प्रवृत्ति हो रही है ऐसा कहनेमें आता है।

रामचन्द्रजी को सीताके प्रति विशेष प्रेम साधर्मीके रूपमें था, सीताको आत्म-ज्ञान था। सीताका हरण हो जाने पर रामचन्द्रजी जंगलमें पूछते हैं "हे वृक्ष ! हे पहाड़ ! तुमने मेरी सीता देखी क्या ?" पक्षियों आदि से भी पूछते हैं। उनका सीतासे साधर्मिणीके नाते प्रेम था, धर्म-रसकी प्रीति थी अज्ञानियोंको उनका इस प्रकार पूछना पागलपन जैसा लगता है। पीलिया रोग वालेको सफेद पत्थर भी पीले लगते हैं; इसी प्रकार यह अज्ञानियोंको विपरीत लगता है। धर्मात्माको धर्मीके

प्रति अपनी भूमिकाके अनुसार राग भाव आता है। इस अधिकारमें श्रावक व्रतका प्रकाश किया है, ऐसा जानकर धर्मात्मा श्रावकोंको सदैव सत्पात्रोंको दान देना चाहिए।

अब आचार्य औषधि दानकी महिमा कहते हैं—

गाथा—९

स्वेच्छाहार विहार जल्पनतया नीरुग्वपुर्जायते।
साधूनां तु न सा ततस्तदपटु प्रायेण सम्भाव्यते॥
कुयादौषधपथ्य वारिभिरिदं चारित्र भारक्षमं।
यत्तस्मादिह वर्तते प्रशमिनां धर्मो गृहस्थोत्तमात्॥९॥

श्रावक मुनियो आदिको औषध दान देते हैं।

धर्मी जीवको धर्मात्माके प्रति उल्लास आता है। जिस प्रकार अपने लिए औषधि लेनेका भाव होता है उसी प्रकार धर्मात्माके लिये औषधिदान करनेका भाव होता है। मुनि इच्छानुसार भोजन या भ्रमण नहीं करता। भोजनकी इच्छा होते हुए भी आहार न मिले, ऐसा हो सकता है। ऋषभदेव भगवानको छः माह तक आहार नहीं मिला क्योंकि लोग आहारकी विधि नहीं जानते थे। जिनके इच्छानुसार भोजन, भ्रमण, तथा भाषण आदि होते हैं उनके शरीरमें रोग होनेकी सम्भावना कम होती है। गृहस्थ इच्छानुसार आहार लेते है, इसलिए सरदी हो तो अनुकूल आहार ले सकते है। गृहस्थको

गरम-गरम भोजन मिल सकता है किन्तु मुनिको ऐसी सुविधायें नहीं मिलती। इच्छानुसार भोजन मिले तो शरीरमें रोग नहीं होवे, साथ ही साताका उदय हो तभी ऐसा होता है; किन्तु मुनिको इच्छानुसार भोजन करनेकी आज्ञा नहीं है, वे हाथमें आहार लेते हैं। वे विहार भी इच्छानुसार नहीं कर सकते। वर्षा ज्यादा हो, बर्फ गिरता हो तो इच्छानुसार विहार नहीं कर सकते। गृहस्थोंको सब प्रकारके साधन सुलभ है, किन्तु मुनि इच्छानुसार विहार नहीं करते। मैं ऐसा करूं—ऐसी इच्छा उनके नहीं होती। वे उपदेश करते हैं किन्तु उपदेशमें अपने लिए कुछ नहीं कहते, अतः उनका शरीर ज्यादातर अशक्त रहता है। "प्रायेण" अर्थात् व्यवहार बतलाया है। धर्मात्मा श्रावकगण मुनिको उत्तम दवा, पथ्य, निर्मल जल देते हैं और उन्हें चारित्र पालन करनेमें समर्थ बनाते हैं। जिस समय जड़की पर्याय या आत्माकी पर्याय हो उसे बदलने में कौन समर्थ है ? नहीं। यहा श्रावककी भक्तिका प्रकाश किया गया है। मुनि धर्मकी प्रवृत्ति श्रावकसे होती है इसलिए आत्म-हितके अभिलाषी जीवोंको मुनि धर्मकी प्रवृत्तिका कारण गृहस्थ-धर्म धारण करना चाहिए।

(प्र० भादवा सुदी १, गुरुवार, ता० १८-८-५५)

ज्ञान दानकी महिमाका वर्णन किया जा रहा है—

गाथा—१०

व्याख्या पुस्तकदानमुन्नतधियां भव्यात्मनां ।
भक्त्या यत्क्रियते श्रुताश्रयमिदं दानं तदाहुर्बुधा॥
सिद्धोऽस्मिञ्जननान्तरेषु कतिषु त्रैलोक्य लोकोत्सवः ।
श्रीकारिप्रकाटिकृताखिल जगत्कैवल्यभाजोजना ॥१०॥

धर्मात्माको सर्वज्ञदेवके प्रति बहुमान आता है ।

सर्वज्ञदेव द्वारा कहे हुए शास्त्रोंका भक्तिपूर्वक व्याख्यान करना ज्ञानदान है। जिसे सच्चा ज्ञान प्राप्त हुआ हो ऐसे मुनि को ज्ञानकी प्रभावना करनेका भाव आये बिना नहीं रहता। केवलज्ञानी पूर्ण हो गये हैं इसलिए उनके विकल्प नहीं होता है। मिथ्यादृष्टिको ज्ञान स्वभावका माहात्म्य नहीं है। केवलज्ञान तीन काल तीन लोकको जानता है, वह ज्ञान आत्मासे होता है। यह कथन केवलज्ञानीके शास्त्रका है, न कि भगवानके नाम पर बनाए हुए शास्त्रों का। चिरायतेकी थैलीपर मिसरी नाम लिखने से मिठास नहीं हो जाता उसी प्रकार मिथ्या दृष्टिके शास्त्र पर भगवानका नाम लिख दे तो नहीं चले।

ज्ञानीको सर्वप्रथम सर्वज्ञके शास्त्रका निर्णय करना चाहिए। सर्वज्ञकी वाणीमें पूर्वापर अविरोध होता है। एक तरफ तो

यह कहा जाता है कि केवलज्ञानीने जो देखा होगा वही होगा और दूसरी तरफ यह कहा जाता है कि निमित्त आए तो कार्य हो अन्यथा नहीं, इस प्रकार कहने वाले यथार्थताको नहीं समझते। धर्मी जीवको सर्वज्ञके प्रति बहुमान आता है। आचार्य कुंदकुंददेव को भी भगवानके दर्शनका विकल्प आया, "हे नाथ, भरतक्षेत्रमें आपका वियोग हुआ, यहां केवलज्ञानी नहीं हैं।" उनके अन्तरमें भक्तिका भाव हुआ, पुण्य योग था इसलिए सीमंधर भगवानके दर्शन मिले और विदेहमें ८ दिन रहे। वे अपने समयके मुख्य आचार्य थे, वे समझते थे कि मेरे पर जैन शासनका महान् उत्तरदायित्व है, ऐसा विचारते हुए उन्हें परमात्माका विरह सालता था।

आदिनाथ भगवानके निर्वाणके अवसर पर भरत चक्रवर्ती के भी आंसू आ गये। "अहो, भरतक्षेत्रमें केवलज्ञानका सूर्य अस्त हो गया! अहा, अब तक प्रश्नोंका समाधान होता था, प्रत्यक्ष भक्ति करते थे, अब परोक्ष भक्ति करेंगे।" इन्द्र भरतको सान्त्वना देता है तब भरत कहता है कि मैं वास्तविकता जानता हूं, किन्तु राग-भाव है इसलिये आंसू आ जाते हैं, भक्तिका भाव आये बिना नहीं रहता।

शास्त्रका भक्तिपूर्वक व्याख्यान ज्ञान दान है।

सर्वज्ञदेवके शास्त्रका भक्तिपूर्वक व्याख्यान करना ज्ञान दान है। मुनि ऐसा ज्ञान दान करते हैं। वे स्वभावका मंथन करते हैं, और अशुभ दूर हो जाता है। लोग इसे समझें तो अच्छा हो,

ऐसा राग होता है। सम्यक्‌दृष्टि और श्रावक भी ऐसा व्याख्यान दे सकते हैं। जिस व्याख्यानसे जगतकी शंका दूर हो, वैसा व्याख्यान करना ज्ञान दान देना है।

साधर्मीको पुस्तक दान भी ज्ञान दान है।

साधर्मी निर्धन हो, किन्तु विशाल बुद्धिवाला हो, अनेकान्त का मर्म समझता हो, वह सत्यको समझता है इसलिए धर्मात्मा उसे पुस्तक देता है। उसकी स्वभाव की तरफ दृष्टि है वह अशुभसे बचता है और पुस्तकका प्रचार करता है। धर्मात्मा भव्य जीवोंको धर्म प्रचारार्थ कम मूल्यमे भी पुस्तकें बेचता है, यह भी ज्ञान दान ही है। स्वयंको राग रहित श्रद्धा ज्ञानका दान मिला है, इसलिए श्रावकको शुभ राग आता है। अहो! धर्मी जीव इस प्रकार शास्त्रोंका पठन-पाठन करे इसलिए पाँच रुपये की पुस्तक दो रुपयेमें देता है। जिसे सम्यक्‌ज्ञानकी रुचि है उसे सम्यक्‌ज्ञानके प्रचारका भाव आये बिना नहीं रहता, तथापि उसे पुण्य ही समझता है। स्वभावकी एकता हो वह कल्याण-कारी है। मुनिको भी ज्ञानदानका भाव आता है। श्रावक शास्त्र दान करते हैं किन्तु आज कल तो धनी भी सस्ती पुस्तक चाहते हैं, ऐसी वृत्ति धर्मात्मा नहीं करते। जिसकी दृष्टि स्वभाव पर है उसे दानका शुभ राग होता है। इस शुभ रागसे ऐसे केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है, जिसकी तीन लोकके जीव उत्साह-पूर्वक भक्ति व आराधना करते है व जिससे तीन लोकके पदार्थ हस्त-रेखाके समान प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते है। श्रावकको ज्ञान

की महिमाका भान हो गया है, वह अशुभ टालता है, शुभ करता है और फिर क्रमशः शुभको टालकर केवलज्ञान प्रकट करेगा, ऐसा श्रावक ही शास्त्रदान करता है और उससे परंपरा से केवलज्ञान की प्राप्ति होगी। तीर्थंकरके कल्याणक तीनलोकके लिए उत्साहके कारण हैं इसलिए श्रावकका ज्ञान दान मुख्य कर्त्तव्य है।

आत्मभानपूर्वक ज्ञान दान करने वाला श्रावक केवलज्ञान प्राप्त करेगा।

भावार्थः—यह अधिकार श्रावक धर्मका उद्योतन अर्थात् प्रकाशन वाला है। सर्वज्ञ भगवानने एक समयमें तीन काल और तीन लोकको जाना है. ऐसे मार्गकी श्रावकको महिमा आती है, उसकी श्रद्धा भी रहती है और आगे बढने पर आंशिक शांति प्राप्त होती है उसे शुभ राग कैसे होता है? इस प्रकरणमें ज्ञान-दानका कथन चलता है। धर्मात्मा श्रावक शास्त्रका व्याख्यान करते हैं किन्तु व्याख्यान तो विशिष्ट ज्ञानी ही कर सकता है। आत्माका स्वभाव क्या है? इत्यादि विभिन्न प्रकारसे विचार करने वाला व्याख्यान करता है, जिसे धर्मका ज्ञान है, अधर्मका विवेक है, पुण्य-पाप स्वभावसे विपरीत भाव हैं और शुद्ध चैतन्य स्वभावमें अनन्त शक्ति है ऐसे भानपूर्वक स्वभाव बुद्धिवाला श्रावक अपनेको स्वयं ही ज्ञान-

दान करता है और दूसरोंको भी देता है। जिनसे यथार्थ ज्ञानकी प्रभावना हो और दूसरोंके यथार्थ ज्ञानकी दृढ़ता हो ऐसे शास्त्र धर्मात्मा लिखते हैं और पठन-पाठन करते है। ऐसे ज्ञानका दान करने वाले श्रावकको केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। अल्पज्ञतामें न भटकना पड़े इसलिए हित चाहने वाले भव्य जीवों को उत्तम दान अवश्य करना चाहिए। अपना ज्ञान स्वभाव शक्तिवान है, उस शक्तिमें से केवलज्ञान विकसित होता है। ऐसी स्वभावोन्मुखता की खबर जिसे है उसे इच्छा होती है कि सब प्राणी वीतरागी स्वभाव की रुचि प्राप्त करें। ऐसे भावमें तीर्थंकर नामकर्म की प्रकृतिका बंध होता है, इतना होते हुए भी वह शुभ रागको हेय समझता है। बारम्बार स्वाध्याय करना, विचार करना चाहिए। आत्मा क्या है ? विकार क्या है ? संयोग क्या है ? आदिका अनन्त कालसे ज्ञान नहीं है इसलिए ये संसारी जीव संसारमें भटक रहे हैं। रोजाना दो चार घण्टे स्वाध्याय करे उसका दिन सफल है। आत्माका भान करके एकाग्र होना ध्यान है। ध्यान सबसे उत्तम है फिर स्वाध्याय उत्तम कहा गया है, इसलिए बार-बार स्वाध्याय करना चाहिए। ये संयोग छूट जायेंगे, यह शरीर नहीं पड़ा रहेगा इसलिए आत्मा क्या है इसका ज्ञान और

ध्यान बिना जिसका जीवन व्यर्थ ही बीता जा रहा है वह श्रावक नहीं कहलाता।

देखो! भगवान्‌के विरहमें मुनि भी भक्तिपूर्वक उल्लसित हो जाते हैं, उन्हें जहां-तहां भगवान् ही दिखाई देते हैं।

जिनेन्द्र भगवान की पूजा करनी चाहिए। भगवानके विरह में प्रतिमा का दर्शन, पूजन करने चाहिए। मुनि भी भगवानके विरहमें खेद करते हैं; उनकी भक्ति प्रकट होती है कि हे नाथ!

"चलते फिरते प्रगट प्रभु देखूँ रे।
मेरा जीवन सफल तब लेखूँ रे॥"

धर्मात्मा परमात्मा को पुकारते हैं। परमात्मा कहां विराजता है, ऐसी खटक लगी रहती है। हे भगवान! यह आकाश में सूर्य है किन्तु मुझे तो ऐसा लगता है कि जब आप मुनिदशा में थे, उस समय आत्मामें लवलीन हो गए और ध्यान करने लगे तब ध्यानाग्नि प्रगट हुई और रागके अभावरूपी वैराग्य की हवा चली, आठों कर्म जलने लगे और उनमें से एक अंगारा इस सूर्यके रूपमें प्रगट हुआ। अज्ञानी जीव को स्त्री, संतान, कुटुम्ब आदिके स्वप्न आते हैं और उनके कषाय की होली सुलगती है और मुनियों को हलते चलते जहां देखो वहीं भगवान ही दिखाई देते हैं। ध्यानरूपी अग्नि जली तब उसमें कर्म जलने लगे उसमें से एक चिनगारीने सूर्य का रूप धारण किया।

मुनि आगे कहते हैं:—हे भगवान्! आपके जो काले बाल दिखाई देते हैं वे, आपने कर्म जलाए उनका धुआँ मालूम देता

है। इस प्रकार धर्मी सूर्य और बालोंमें भगवान को देखते हैं। श्रावक जिनेन्द्र भगवान को देखते हैं। श्रावक जिनेन्द्र भगवान की पूजा, गुरु की सेवा करते हैं। जीवों को जिनेन्द्र भगवानके शास्त्रों का स्वाध्याय करना चाहिए। जो नहीं करता है उसको कान और मन नहीं मिले हैं। आत्म-भानवाले साधक को भगवान की भक्ति, स्वाध्याय, चर्चा आदि करने का भाव आता है।

गाथा—११

सर्वेषामभयं प्रवृद्ध करुणैर्यद्दीयते प्राणिनां।
दानं स्यादभयादि तेन रहितं दान त्रयं निष्फलम् ॥
आहारौषधशास्त्र दान विधिभिः क्षुद्रोगजाऽचाद्भयं।
यत्तत्पात्रजने विनश्यति ततो दानं तदेकं परम् ॥११॥

समस्त प्राणी आत्मा है—ऐसा समझकर उन्हें दुःख न देने का भाव अभय-दान है।

धर्मात्मा को भव्य अर्थात् योग्य जीवोंके प्रति करुणा उत्पन्न होती है। मुझे दूसरे को दुख नहीं देना चाहिए, आत्मा के प्रति अभय रुचि हुई इसलिए सब प्राणियों को दुख न देवूं ऐसा भाव होता है, इसे व्यवहारमें रक्षा करना कहा जाता है। अन्य प्राणियों को मेरी तरफसे अभय है, मेरेसे उन्हें दुख न हो, ऐसा अभयदान का भाव आता है। अन्य प्राणियों को आत्मा समान देखकर उनके प्रति अभय भाव नहीं आवे तो तीनों दान

व्यर्थ हैं। आहार-दानसे भूख का भय दूर होताहै, औषध-दान से रोग का भय और शास्त्र दानसे मूर्खता का भय नष्ट होता है। इसलिए अभय दान सबमें उत्कृष्ट दान है। मेरेसे किसी को भय न हो ऐसा भाव धर्मात्मा को आता ही है। उसके अनन्तानुबंधी का अभाव है इसलिए किसीके प्रति वैर न हो, ऐसी वृत्ति धर्मात्मा को होती ही है।

भावार्थः—अभय अर्थात् भय न होना। यदि आहार, औषध, तथा शास्त्र-दान करने से भूख, रोग और मूर्खता जनित भय दूर होते हैं तो तीनों दान अभय दानके आधीन हैं इसलिए अभय दान सब दानोंमें उत्तम है। समस्त प्राणी परमात्मा समान हैं ऐसी बुद्धि हुए बिना आहार, ज्ञान तथा औषध-दान यथार्थ नहीं होते, इसलिए अभय-दान उत्कृष्टदान है।

गाथा—१२

आहारात्सुखितौषधादिततरां निरोगता जायते।
शास्त्रात्पात्र निवेदितात्परभवे पाण्डित्यम त्यद्भुतम् ॥
एतत् सर्व गुण प्रभा परिकरः पुंसोऽभयाद्दानतः।
पर्यंते पुनरुन्नतोन्नत पद प्राप्तिर्विमुक्ति स्ततः ॥१२॥

सम्यग्दृष्टि औषधि-दानके फलसे चक्रवर्ती, बलदेव आदि का पद प्राप्त कर मुक्त होते हैं।

समस्त आत्मा परमात्मा समान है, ऐसे भानवाले को

अभय-दान का भाव आता है। मुनि, श्रावक, ब्रह्मचारी, सम्यक्त्वी आदि सत्पात्रों को आहार देने के फलस्वरूप इन्द्र, चक्रवर्ती, बलदेव आदि पदों की प्राप्ति होती है। सम्यक्त्वी को राग और उसके फल की इच्छा नहीं होती। अच्छा किसान घासके लिए खेती नहीं करता किन्तु जहां सौ मण अनाज हो वहां घास सहज ही होगा उसही प्रकार धर्मात्मा शुद्ध भाव की नजर रखता है इसलिए उसे जहां धर्म होता है वहां पुण्य भी सहज ही होगा। मिथ्यादृष्टि को तीर्थंकर, बलदेव आदि पद नहीं मिलते किन्तु वह मुनि, ब्रह्मचारी, श्रावक को आहार-दान आदिके फलस्वरूप भोग-भूमिमें जन्म लेता है। भोग-भूमिमें जुगलिया—भाई-बहनके रूपमें जन्म लेते हैं और वे पति-पत्नी होते हैं, उन्हें व्यापार धंधा नहीं करना पड़ता, वहां कल्पवृक्ष होते हैं, वहांके मनुष्यों की तीन पल्योपम की आयु होती है। यहां धर्मात्माके लिए कथन है, वे स्वभाव की निधि का अवलोकन करते हैं। अहो! आत्मा ज्ञान स्वभाव है, ऐसे ज्ञानवाले शुभराग करते है इससे चक्रवर्ती पद की प्राप्ति होती है। दस हजार गायों को गन्ना खिलाते हैं, उनका दूध हजार गायों को पिलाया जाता है, उन हजार गायों का दूध सौ गायों को पिलाया जाता है। इस प्रकार करते हुए सबसे अच्छे दूध की खीर बनाई जाती है जिसका एक कौर भी करोड़ों पैदल नहीं पचा सकते ऐसी खीर का भोजन चक्रवर्ती करते हैं।

प्रद्युम्नकुमार सोलह वर्ष की उम्रमें क्षुल्लक का वेश बनाकर

अपनी माता (रुक्मणि) के पास आये। जो केसरिया लाड वासुदेव ही पचा सकते थे उनको प्रद्युम्नकुमार पचा जाते हैं। तत्पश्चात् वे अपना असली स्वरूप प्रकट करते हैं और कहते हैं कि मैं तुम्हारा पुत्र हूं। प्रद्युम्नकुमार कामदेव थे, छ खंडमें उनके समान किसी का रूप नहीं किन्तु वे भी सब कुछ छोड़-छाड़ कर मुनि बन कर मोक्ष गए। पहले औषधि-दान दिया, उसके फलमें उन्हें ऐसा शरीर मिला था। तीर्थंकर भगवान का जन्म होने पर इन्द्र उनके शरीर को हजार नेत्रसे देखते हुए भी तृप्त नहीं होता। उन्होंने पूर्वभवमें ऐसा पुण्यार्जन किया था जिसके फलस्वरूप ऐसा शरीर मिला।

श्री कुन्दकुन्द आचार्यने अपने पूर्वभवमें मुनिको शास्त्र-दान दिया था। उनके पूर्वभव की कथा है कि एक बार सारे जंगल में आग लग गई, वहीं शास्त्र की पेटी रखी हुई थी किन्तु उन्होंने प्राणों की चिन्ता न करते हुए उसकी रक्षा की और मुनि को दे दी। इसी दानके फलस्वरूप उन्हें अगले भवमें (कुन्दकुन्द के भवमें) ऋद्धि प्राप्त हुई और उसीके परिणामसे आठ दिन तक भगवान की वाणी अपने कानोंसे सुनने का शुभावसर मिला इसी कारण मंगलाचरणमें उनका तीसरा स्थान है।

"मंगलम् भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुंद कुंदार्यों जैन धर्मोस्तु मंगलम्॥"

जिसने अपने पूर्व भवमें शास्त्र का अनादर किया हो उसकी बुद्धि इस जन्ममें अल्प-विकसित होती है। उसे व्यापार

सम्बन्धी बात भले ही याद रहे किन्तु आत्मा की बात याद नहीं रहती। यह सब पूर्व भवमें शास्त्र की अमान्यता, अपमान किए उनका फल है। ज्ञान-दानसे मूर्खता का नाश होता है। देखो! दिगम्बर मुनि आत्मामें झूल रहे थे। उन्हें लगा कि जीव संसार चक्रमें भटक रहे हैं उनके लिए शास्त्र रचना करूं और उन्होंने शास्त्र रचना की। श्रीमद् रायचन्द जी ने इसे 'अमृत शास्त्र' कहा है।

समस्त आत्मा पूर्ण स्वभावी है ऐसे भान सहित जो दूसरों को अभय-दान देता है उसे सुख और निरोगता मिलती है। चक्रवर्त्ती आदि उत्तम पद प्राप्त होकर अन्तमें मुक्ति मिलती है। अतः उत्तमोत्तम सुख, निरोगता आदि गुणोंके इच्छुक जीवों को चार प्रकार का दान करना चाहिए। श्रावक अवस्था रूपी दुकानमें शुभ भाव का व्यापार होता है।

गाथा—१३

कृत्वा कार्यशतानि पाप बहुलान्याश्रित्य खेदं परं।
भ्रान्त्वा वारिधि मेखलां वसुमतीं दुखेन यध्यार्जितम्।
तत्पुत्रादपि जीवितादपि धनं प्रेमोऽस्य पन्था शुभो।
दानं तेन च दियतामिद महो नान्येन तत्सद्गति ॥१३॥

अज्ञानी को पुत्र और जीवन की अपेक्षा लक्ष्मी
अधिक प्रिय लगती है।

अहो! यह मनुष्य गृहस्थाश्रममें सैकड़ों पाप, हिंसा, झूँठ,

चोरी, विषय भोग आदिके पाप भाव करता है। वह प्रातःकाल से संध्या तक पाप कर्म कर खेद खिन्न होता है। धनार्जनके लिए वह भूख, प्यास सहता है, अपना घर छोड़कर बम्बई, कलकत्ता, रंगून, अफ्रीका आदि स्थानों पर जाता है। व्यापार का भाव पाप भाव है। यह मनुष्य सुबहसे शाम तक पापका भाव करता रहता है। स्त्री, पुत्र आदिके पोषणमें, सगाई-ब्याह करने मे, गहना, कपड़ा बनाने में, इत्यादि ऐसे ही अन्य कार्योंमें पाप भाव करता रहता है। लड़के लड़कियोंके विवाहमें खर्च करना भी ऐसे ही कार्योंमें शामिल है जिनमें पाप होता है और जिनके करने से इस जीव को दुख होता है। बीमार होते हुए भी यह मनुष्य दुकान पर जाता है किन्तु धर्म चर्चा सुनने के लिए नहीं जाता। वह दमा का रोग होते हुए भी दुकान जाता है, कष्ट सहन करता है और अगर पूर्व पुण्यके योगसे लक्ष्मी मिल जाती है तो उसे पुत्रसे भी अधिक प्रिय समझता है। एक लड़के को मैनेन्जाइटीस हुआ, और निदान कराने पर डाक्टरोंने बताया कि इसकी दवामें दस हजार रुपए खर्च होंगे किन्तु रुपयों का लोभ करता है और लड़के के मरने की परवाह नहीं करता। अपने शरीरमें भी बीमारी हो जाय तो भी वह एक पैसा खर्च नहीं करना चाहता। उसे लक्ष्मीसे सबसे अधिक प्रेम है, उसे जिन्दगीसे भी अधिक प्रिय मानता है। ग्राहकोंसे, पैसेके कारण उसे इतना अधिक प्रेम है कि प्राणों को कुछ नहीं समझता।

लक्ष्मी का उपयोग दानमें किया जाय तभी उसकी सार्थकता है।

जीवनसे भी प्यारी लक्ष्मीका उपयोग दानमें किया जाय तभी उसकी सफलता और सार्थकता है। जंगलमें निवास करने वाले मुनि कहते हैं कि लक्ष्मीको खर्च करनेका उत्तम मार्ग तो दान मार्ग है। जिसे दान करनेका राग नहीं आवे उसको वास्तविक दृष्टि प्राप्त नहीं हुई। चन्द्रकान्त मणिका, चन्द्र-किरणोंके स्पर्श बिना, सही मूल्यांकन नहीं किया जा सकता क्योंकि उन्हींके स्पर्शसे चन्द्रकान्त मणिमें शीतल जल झरता है। इसी प्रकार लक्ष्मीके पत्थरोंकी--चांदी, सोने, सिक्के, जवाहरात की सफलता क्या ? राग कम कर उसका दान किया जाय तभी लक्ष्मीकी सफलता है। वह व्यापारमें खूब ध्यान रखता है कि कोई लूट न ले जाय, कोई चोरी न कर ले, ये सब भाव पाप भाव हैं इसलिए लक्ष्मीके उपयोगका मार्ग दान है, इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है। जिसे लक्ष्मीका उपयोग दानमें करनेका भाव नहीं आता वह धर्मी नहीं है। प्रत्येक दिन ऐसा भाव करना चाहिए। दानका भाव नहीं आवे तो गृहस्थाश्रम निष्फल है। अनेक पाप और दुखोंसे प्राप्त लक्ष्मी, पुत्र और जीवनसे भी प्रिय है, ऐसी लक्ष्मीका सदुपयोग दानमें ही है। जिसे आत्म-स्वभावकी दृष्टि है उसे धर्मात्मा की सहायता करनेका भाव आता है। उन्हें लक्ष्मीका उप-योग—दान करनेका भाव नहीं आवे तो आत्माकी रुचि नहीं है, ऐसा जानना।

दान करनेका उपदेश सुनकर कोमल जीव
राग कम कर दान देते हैं।

दानका उपदेश लोभी प्राणियोंके उद्धारके लिए है। चमेलीके फूलपर जब भ्रमर गुंजार करता हुआ आता है तो फूल विकसित हो जाता है किन्तु लकड़ीका फूल भ्रमरके गुंजारसे नहीं खिलता। पाप कार्यों द्वारा लक्ष्मी मिली है उसे ज्ञान दानमें लगानेका उपदेश भ्रमर गुंजार सदृश है, वह किसे सुनाई पड़ता है? जिनका हृदय लकड़ीके फूलकी तरह है उनपर दानके उपदेशका कोई असर नहीं पड़ता। चन्द्रमा की किरणोंसे कुमोदिनी ही खिलती है किन्तु संगमरमरकी कुमोदिनी नहीं खिलती। इसी प्रकार दानका राग कम करनेका उपदेश रूपी गुंजार किसे लागू होती है? जिसका हृदय लकड़ी या पत्थरके कमल की तरह नहीं होगा उसीको यह उपदेश प्रभावित करता है। लकड़ीके फूलकी तरह हृदय वालोंको यह उपदेश प्रभावित नहीं करता। लोभरूपी कन्दरामें पड़े हुए लोभी-कंजूसके लिए यह उपदेश है, किन्तु फूल जैसे कोमल हृदय वालोंको ही यह लागू पड़ता है।

रागके अभाव स्वरूप आत्माकी दृष्टि रखनेवाला लक्ष्मीका
सदुपयोग दानमें करता है।

धन खर्च करनेका मार्ग दान है। यहां स्त्री, लड़का-लड़कीके लिए खर्च करनेकी बात नहीं है। जगतके प्राणियोंको पैसा मिला है, उसमें राग घटाकर धर्मकी प्रभावना करनेका राग

धर्मात्माको आता है, वहां लक्ष्मीका सदुपयोग व्यवहारसे कहा है इसके अतिरिक्त अन्य कोई उत्तम मार्ग नहीं है। जिसे रागके अभाव-स्वरूप आत्मापर दृष्टि है उसे राग कम कर दानका भाव आए बिना नहीं रहता, इसलिए सज्जन पुरुषोंको दान मार्ग में पैसा लगानेमे लोभ नहीं करना चाहिए। एक पैसा भी साथ नहीं जायेगा सब यहीं पड़ा रहेगा। जितनी लक्ष्मी दानमें देगा उतनी ही तेरी है बाकी की लक्ष्मीका तो तू रक्षक मात्र है। पूर्ण शुद्धता प्रकट करनेकी आकांक्षा वाले और रागका सर्वथा अभाव करनेके इच्छुक राग कम किये बिना नहीं रहेंगे। जिस घरमें दानादिक की क्रिया नहीं होती वह घर गहरी खाईमें डूब जायगा। भानपूर्वक शुभ रागका दान किया होगा तो संस्कार बने रहेंगे। "अहो! मैं अभी तक पूर्ण नहीं हुआ इसलिए यह शुभ राग आता है। अब मे राग नष्टकर पूर्ण होऊंगा इसलिए सज्जन पुरुषोंको दानमें पैसा लगाना चाहिए।" ऐसी भावना श्रेयस्कर है।

प्रथम भादवा सुदी २ शुक्रवार ता० १९-८-५५

श्रावक धर्मकी प्रभावनाके लिए दान करता है।

गृहस्थी श्रावक और धर्मीकी दृष्टि कैसी होती है, धर्म दृष्टि सहित श्रावकत्व कैसे सुशोभित होता है? यह प्रकरण चल रहा है। यह व्रतका अधिकार है इसमें दानकी चर्चा है। धर्मात्मा तो हो किन्तु अपनी लक्ष्मीके प्रमाणमें दान न करे तो

वह लोभी है। धर्मी जीवके व्रतका सच्चा विकास होता है। जिनेन्द्र भगवानकी पूजा, गुरु सेवा, स्वाध्याय, संयम, तप और दान—ये छः आवश्यक श्रावकको हमेशा करने चाहिए, अगर वह हमेशा नहीं करे तो वह श्रावक कहलाने योग्य नहीं है। एक दिन शरीर नष्ट हो जायगा, संयोग जनित वस्तुएं हवाकी तरह उड जायंगी, अनन्त कालमें मनुष्य भव मिला है उसमे मुनि धर्म ग्रहण करना चाहिए, अगर मुनिधर्म ग्रहण नहीं कर सके तो गृहस्थ और ब्रह्मचारी रहना चाहिए। इस गाथामें कहा है कि धर्मप्रेमीको देव-गुरु-शास्त्रके प्रति अनुराग होता ही है उनके प्रभावनार्थ अपने पैसेका सदुपयोग करता ही है। सांसारिक कार्योंमें अपने धनका उपयोग करना पाप है, दानमे खर्च करना पुण्य है। धर्मीको सच्चे देव-गुरु-शास्त्रकी शोभा और प्रभावनोका भाव आये बिना नहीं रहता। शरीरकी शोभाके लिए खर्च करते हैं उन्हें देव-गुरु-शास्त्र की प्रभावनाके लिए भी दान देना चाहिए।

गाथा—१४

दानेनैव गृहस्थता गुणवती लोक द्वयो द्योतिका।
नैव स्याननु तद्विना धनवतो लोकद्वय ध्वंसकृत्॥
दुर्व्यापार शतेषु सत्सु गृहिणः पापं यदुत्पद्यते।
तन्नाशाय शशांकशुभ्र यशसे दानं न चान्यत्परम्॥१४॥

दानसे श्रावककी शोभा बढ़ती है और आत्मीय व लौकिक यश प्राप्त होता है।

कंजूस जीव लोभरूपी खाईमें गिरे हुए हैं उन्हें धर्मकी तरफ आकर्षित करनेके लिए आचार्य कहते हैं कि धर्मी मनुष्योंका गृहस्थीपना दानसे ही सुशोभित होता है। अपने पुत्र-पुत्रीके विवाहके लिए सब कुछ करता है तब देव-गुरु-शास्त्रके प्रति प्रेम क्यों नहीं आता। (यह अधिकार श्रावक धर्मका प्रकाशन करता है) जिसे धर्मकी तरफ दृष्टि हुई है उसकी शोभा देव-गुरु-शास्त्र और धर्मात्माके लिए दान देनेसे बढ़ती है। किन्तु दान बिना गृहस्थपना नष्ट हो जाता है। गृहस्थी धनार्जनके लिए अनेक प्रकारके छल-कपट करता है किन्तु पुण्यका उदय हो तभी पैसा मिलता है। व्यापारमें पाप किया जाता है। स्त्री-संतानके लिए धन कमाकर रख जाना दान नहीं है किन्तु पाप भाव है क्योंकि वे भाव पाप वृत्ति सहित होते हैं। उस पापका नाश करनेके लिए तथा चन्द्रमा समान यशकी प्राप्तिके लिए दान करना चाहिए। सत्पात्रको दान देनेसे आत्मीय और लौकिक यश मिलता है, इसलिए भव्य जीवोंका कर्त्तव्य है कि वे योग्य पात्रोंको दान देते रहें। यह सब कुछ मुनि अपने स्वार्थ या प्रयोजनके लिए नहीं कहते, किन्तु श्रावकके शुभ रागके लिए कहते हैं। अपनी शक्ति अनुसार दान देना चाहिए। धर्मात्मा को धर्म प्रेमके कारण ऐसा शुभ राग आये बिना नहीं रहता।

गाथा—१५

पात्राणामुपयोगी यत्किल धनं तद्धीमतांमन्यते ।
येनानंतगुणं परत्र सुखदं व्यावर्तते तत्पुनः ॥
यद्भोगाय गतं पुनर्धनवतस्तन्नष्टमेव ध्रुवम् ।
सर्वासामिति सम्पदां गृहवतां दानं प्रधानं फलम् ॥१५॥

लक्ष्मीका दानमें उपयोग किया जाय तभी वह सफल है; सांसारिक कार्यों में व्यय की हुई लक्ष्मी नष्ट हो जाती है।

जिस धनका उपयोग उत्तमादि सत्पात्रोंके दानमें किया जाता है उसे ही विद्वान उत्तम समझते हैं। व्रत, तप, धर्मकी शोभा-प्रभावनामें लगाया हुआ धन अच्छा समझा जाता है। धर्मकी वृद्धिमें उसका लक्ष्य है वह परलोकमें सुख देने वाला है। धर्मके प्रेममें राग कम करके दान किया जाय तो उसका दान-दाताको महान् फल मिलता है। यद्यपि उसे उस फलकी इच्छा नहीं है किन्तु उसे वह सहज ही मिल जाता है। जिस प्रकार बीज जमीनमें बोया जाय तो और उससे बहुत-सा अनाज पैदा होता है उसी प्रकार धर्मात्मा गुप्त दानमें हजारों रुपये खर्च करता है, उसके फलस्वरूप उसे उत्तम पद मिलता है। सम्यक्त्वीको तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती आदि उच्च पद मिलते हैं। उन्हें आत्माके प्रेम सहित राग हुआ है। आत्मा अनन्त गुणोंका पिण्ड है उसकी रुचिपूर्वक देव-गुरु-शास्त्रके प्रति जिसे प्रेम हुआ उसे सर्वज्ञदेव, जिनके आत्माके अनंत गुण विकसित हो गये हैं,

के प्रति तथा उनकी प्रतिमाके प्रति प्रेम आता ही है जिसका उसे अनन्त गुना फल मिलता है।

मुनिको बारम्बार छठे-सातवें गुणस्थान की भूमिका आती है; उन्होंने ताड़ पत्रोंपर सींक द्वारा छिद्र करके शास्त्र लिखे है। मुनि तो लिखकर चले जाते है पीछे श्रावक उन्हें सुरक्षित रखते है।

जीव विचार करते हैं कि "हमारे पास अभी थोड़ी-सी पूंजी हो इसमें से दानके लिए कैसे खर्च करें ? हां, ज्यादा हो जाय तो खर्च कर सकते हैं।" उसे कहते है कि भाई, सांसारिक कार्योंमे खर्च करते हो और धर्मके लिए नहीं खर्च करो तो धर्मी नहीं हो। यह मनुष्य युरोप आदि देशोंमें भ्रमण करता है तब वहां अनेक प्रकारके भोग-विलासोंमे पैसा खर्च करता है, किन्तु इस प्रकार उसकी लक्ष्मीका नाश ही होता है, और पूर्व पुण्योंका भी जल्दी ही अन्त आ जाता है। इसलिए समझना चाहिए कि गृहस्थकी सब सम्पदाका प्रधान फल एक दान ही है। स्त्री, पुत्रादिकके लिए खर्च किया हुआ धन भी नष्ट ही होता है और कूंड़मे जाता है क्योंकि उसका कोई फल नहीं है और न कोई नवीन पुण्यका बंध होता है जिसके उदयमें आनेपर फिर धन मिले। यह है वस्तु स्वरूप।

प्रश्नः—फल तो भावोंका है न ?

समाधान :—लड़के-लड़कीके लिए खर्च करता है वहां तो भाव ही लेकर नहीं बैठ जाता। कोई जीव अन्तिम

समयमें कहे कि मुझे पांच लाख रुपए खर्च करने है तो लड़का टालने की इच्छासे कहता है कि पिता जी आज तो पंचमी है कल छठ को खर्च करना किन्तु उनके खर्च करने के लिए छठ होनी ही नहीं वे तो आज ही कूच कर जाएंगे। लोभी जीवों, देखो ! स्त्री पुत्रके लिए जो धन रखा जाता है वह लड्डू को विष्ठामें डालने के समान है।

भावार्थ :—गृहस्थ सदा अनेक प्रकारके कार्योंमें पैसा खर्च करता है, वह सब पैसा कूड़ेमें डालनेके समान है। किन्तु जिस धन का उत्तम आदि पात्रोंमें तथा धर्म की शोभामें व्यय किया जाता है वह उत्तम है और पर-भवमें अनेक प्रकारके सुखों का कारण है। उस दाता को तीर्थकर, बलदेव आदि का उत्तम पद मिलता है। धर्मात्मा को फल की इच्छा नहीं है; जो मांगता नहीं है उसे वह पद अपने आप मिल जाता है। जो धन भोग-विलास आदि हलके कार्योंमें तथा विभिन्न मिठाइयां खानेमें, वस्त्राभूषण, मोटरादि वाहनोंमें खर्च किया जाता है वह धन सर्वथा नष्ट हो जाता है तथा उसके फलस्वरूप परलोकमें किसी प्रकार का सुख नहीं मिलता। स्त्री, पुत्र-पुत्री, काका, काकी, भतीजा, भतीजी, बहन-बेटी आदिके लिए खर्च करना पाप है क्योंकि वह सब अधिक राग का परिणाम है,

वह खर्च किया हुआ धन सर्वथा नष्ट होता है उसका परलोकमें कोई पुण्य फल नहीं मिलता, क्योंकि समस्त सम्पदा का प्रधान फल दान है। इसलिए धर्मात्मा श्रावकों को सर्वदा उत्तमादि पात्रों को दान देकर प्राप्त हुए धन का सदुपयोग करना चाहिए।

आचार्य पुनः दान की महिमा बतलाते हैं :—

गाथा—१६

पुत्रो राज्यमशेषमर्थिषु धनं दत्त्वाभयं प्राणिषु।
प्राप्ता नित्य सुखास्पदं सुतपसा मोक्षं पुरा पार्थिवा॥
मोक्षस्यापि भवेत्ततः प्रथमतो दानं निदानं बुधैः।
शक्त्या देयमिदं सदा तिचपले द्रव्ये तथा जीविते॥१६॥

जीवन और लक्ष्मी को विनाशक जानकर
यथा शक्ति दान देना चाहिए।

भूत-कालमें बड़े २ राजा-महाराजाओंने अपने पुत्र को राज्य देकर, याचकों को दान देकर, सब प्राणियों को अभय-दान देकर मुनि धर्म स्वीकार किया और अन्तमें अविनाशी सुख प्राप्त किया है इसलिए मोक्ष का प्रथम कारण दान है, इसलिए धर्मी को दान का भाव आए बिना नहीं रहता। विद्वानों को जानना चाहिए कि धन और जीवन पानीके बुलबुलेके समान है; धन को रखना भी चाहे तो रहेगा नहीं।

"नहीं था उन्हें मिला और जिन्हें मिला था उनका गया।"

जिस प्रकार पानी का बुलबुला नष्ट हो जाता है उसी प्रकार धन और जीवन अपने आप नष्ट हो जाते हैं। इनको विनाशीक समझकर शक्तिके अनुसार धर्म की वृद्धिके लिए उत्तम पात्रादि को दान देना चाहिए।

(प्रथम भादवा सु० ३ शनिवार ता० २०-८-५५)

गाथा—१७

ये मोक्षं प्रति नोद्यताः सुनृभवे लब्धेऽपि दुर्बुद्धियः।
ते तिष्ठंति गृहे न दानमिह चेतन्मोह पाशो दृढः॥
मत्वेदं गृहिणा यथार्द्धि विविधं दानं सदा दीयतां।
तत्संसार सरित्पति प्रतरणे पोतायते निश्चितम्॥१७॥

संसारसे पार होने के लिए दान जहाज समान है
इसलिये यथा शक्ति दान देना चाहिए।

आचार्य कहते हैं कि इस मनुष्य भवका मिलना अनन्त-कालमें दुर्लभ है। जैसे वृक्ष को जला कर राख कर दी जाय और उस राख को नदीमें बहा दें तो उस राखसे वृक्ष उत्पन्न होने में बहुत समय लगे, उसी प्रकार यह मनुष्य भव दुर्लभ है, किन्तु इसे पाकर भी यह जीव विकारसे छूटने का प्रयत्न नहीं करता और घरमें पाप कार्य किया करता है। जो पुरुषार्थ द्वारा सच्ची समझपूर्वक मुनि नहीं बने वे मूर्ख हैं। अरे रे! मैं आत्मा हूं, ऐसा

विचार नहीं करता। आग लगने पर कुआं खोदना व्यर्थ है, इसलिए समय रहते विचार करना चाहिए। जिसे दान धर्म करने की रुचि नहीं उसे मोहने बांध रखा है। यहां 'मोह' शब्द से जड़ मोह कर्म नहीं समझना चाहिए, आत्मा अन्तरंग मोह भावसे बंधा हुआ है ऐसा समझना चाहिए और अपनी शक्ति अनुसार दान करना चाहिए।

धर्मी जीव महापवित्र मुनियों को दान देते है किन्तु उन्हें फल की इच्छा नहीं है। जो दान नहीं देता उसके घर का नाश-अन्त हो गया है। दूसरे देते हैं या नहीं इसको नहीं देखकर अपनी शक्तिके अनुसार दान देना चाहिए। एक राजाने एक लाख रुपया दान दिया और पीछे एक गरीब आदमीने अपनी एकमात्र संपत्ति-साढ़े तीन आनेमात्र— दी। भले ही उसने साढ़े तीन आने दिए किन्तु उसकी तो सारी संपत्ति वही थी इसलिए राजाने उस गरीब का नाम सर्वप्रथम लिखाया। इसलिए भव्य जीवों को अनेक प्रकारसे धर्मकी वृद्धिके लिए दान देना चाहिए। जिसे धर्मके प्रति प्रेम हुआ हो उसे धर्म की वृद्धि करनेके लिए धन का उपयोग करना चाहिए क्योंकि उत्तम पात्र को दिया हुआ दान संसार रूपी समुद्रमें जहाजके समान है। संसार का अभाव करने की दृष्टिवाले को संसार का अभाव किए हुए देवादिकके प्रति प्रभावना का भाव आए बिना नहीं रहता। कोई अपनी मान-प्रतिष्ठाके लिए रुपए देता है तो वह आत्माके लिए नहीं देता। अतः राग कम करने के लिए देव-गुरु-शास्त्रादिके हेतु दान देना चाहिए।

असली दाता सांसारिक कार्योंमें मितव्ययता करता है
किन्तु धार्मिक कार्योंमे अपनी शक्ति नहीं छिपाता।

भावार्थः—दुर्लभ मनुष्य भव तथा ऊँचा कुल पाकर भव्य जीवों को मोक्षके लिए प्रयत्न करना चाहिए। जो कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को मानता है वह मूढ़ है, भव्य जीवों को मोक्षके लिए प्रयत्न करना चाहिए। अगर ऐसा नहीं कर सके तो अपनी शक्ति अनुसार दान देना चाहिए। वीतराग भाव की दृष्टिवाला केवलज्ञानके सन्मुख होता है। दानके बिना जीवन व्यर्थ नहीं करना चाहिए। सांसारिक कार्योंमें मितव्ययता करनी चाहिए किन्तु धार्मिक कार्योंमें मितव्ययता न रखकर उदारतापूर्वक देना चाहिए।

एक आदमीके पास कोई चंदा लेने गया। वह बीड़ी जलाकर आधी जली हुई माचिस की सींक बचाकर रख लेता था, वह इतना मितव्ययी था इसलिए चंदा लेने गया उसे ज्यादा मिलने की आशा नहीं थी उस आदमीने पूछा "कि तुम मुझसे कितनी आशा रखते हो ?"

जवाब :—जितनी आप की इच्छा हो उतना दे दीजिए। उस आदमीने उसी समय दस हजार रुपया दे दिया; जब कि जानेवाला दो सो की आशासे गया था किन्तु जब उसने दस हजार दिया तब वह चकित हो गया। तो उस व्यक्तिने खुलासा किया कि सांसारिक कार्यों

में किफायत करनी चाहिए किन्तु धार्मिक कार्योंमें नहीं। धार्मिक कार्योंके लिए शक्ति अनुसार दान देना चाहिए अगर कोई नहीं दे तो उसे धर्मके प्रति अनुराग नहीं है।

"दाता छिपै नहीं घर याचक आए।"

धार्मिक पुस्तकें छपाना आदि प्रभावनाके कार्योंमें दाता छिपता नहीं। "रण चढ़े राजपूत नहीं छिपता।" इसी प्रकार दाता धार्मिक कार्योंके प्रसंगमें छिपा हुआ नहीं रहता। धर्मात्मा शक्ति अनुसार पैसे का सदुपयोग करता है।

गाथा—१८

यैर्नित्यं न विलोक्यते जिनपति न स्मर्यते नार्च्यते।
न स्तूयेतनदीयते मुनिजने दानं च भक्त्या परम्॥
सामर्थ्ये सति तद् गृहाश्रम पदं पाषाणनावा समं।
तत्रस्था भरसागरेऽति विषमे मज्जन्ति न श्यांती च॥१८॥

जो मनुष्य लक्ष्मी आदि का संयोग होते हुए भी भगवानके दर्शन नहीं करता और लोभी आढ़तिया तथा स्त्री पुत्रोंके दर्शन करता है वह संसारमें डूबता है।

"जिन प्रतिमा जिनसारखी भाखी आगम मांय।"

ऐसा पण्डित बनारसी दासजी कहते हैं। जो जीव त्रिलोकी-नाथ परमात्माके दर्शन नहीं करता वह पापी है। व्यापारी

सबेरे २ डाक की प्रतीक्षा करता है किन्तु भगवानके दर्शन नहीं करता उनका गृहस्थाश्रम पत्थर की नावके समान है। वह प्रातः उठकर समाचार पत्र पढ़ता है किन्तु आत्म-प्रेमी भगवान का स्मरण करता है। विवाह आदि कार्योंमें पुत्री पुत्र न आ सके तो गृहस्थी जीव याद करता है कि बीमार हो गया होगा। इसलिए लड़की नहीं आ सकी—"मेरी बेटी नहीं आई" ऐसे याद करता है। इसी प्रकार धर्मात्मा नियमित रूपसे भगवानके दर्शन करता है। जो दर्शन, पूजा, गुरु सेवा, दान नहीं करता उसका गृहस्थाश्रम पत्थर की नावके समान है; इसलिए देवपूजा, गुरु सेवा, दान आदि नित्य करने चाहिए।

जो जिनेन्द्र देवके दर्शन तथा दानादि नहीं करता
वह पत्थर की नावके समान डूब जाता है।

"गृहस्थियोंके व्रत का उद्योतन कैसे हो" यह प्रकरण चल रहा है। जो गृहस्थ होते हुए भी जिनेन्द्र भगवानके दर्शन नहीं करता वह श्रावक नहीं है। जिसे आत्माके ज्ञानस्वभाव की प्रीति और रुचि हो गई है उसे भगवान की अविद्यमानतामें उनकी प्रतिमाके दर्शन करने का भाव आए बिना नहीं रहता। भगवानके दर्शन न करनेवाला गृहस्थ संसाररूपी समुद्रमें डूबता है। जिनके आत्माके ज्ञानभाव पूर्वक अंतरंग निर्ग्रंथता प्रकट हुई है और शरीरमें पर वस्त्रादि नहीं है ऐसे मुनि का यह कथन है कि गृहस्थ कैसा होता है, यह मार्ग अनादिकालीन है। शरीरमें रोग हो या उसकी स्थिति खराब हो तो अलग बात है किन्तु

शरीरके अच्छा होते हुए भी जो भगवान की प्रतिमा को नहीं मानता या कुदेवादि को मानता है वह मिथ्यादृष्टि है।

"जिन प्रतिमा जिन सारखी" ऐसा ज्ञानी कहते हैं। जिन्हें पवित्र आत्मा की दृष्टि प्राप्त हो गई है वे भगवान की मूर्ति पर उनका निक्षेप करते हैं। भगवान वीतराग निर्ग्रंथ स्वरूप हैं उन्हें पूर्ण केवलज्ञान प्रकट हुआ है। प्रातःकाल उनके दर्शन कर पूजा करने का भाव धर्मात्मा को आए बिना नहीं रहता। जिसे ऐसा भाव नहीं आता वह धर्मी नहीं है, उसके सामायिक आदि व्यर्थ हैं। जो सर्वज्ञके अनन्त गुणों का स्तवन नहीं करता वह धर्मी नहीं है। अहो। धन्य अवतार ! आपने अंतिम शरीर धारण कर केवलज्ञान पाया जो उनकी सी स्तुति नहीं करता या निर्ग्रंथ साधु को आहार दान करने का भाव नहीं करता उस गृहस्थी का गृहस्थाश्रम पत्थर की नावके समान है। सर्वज्ञके सनातन मार्गमें, जो दृष्टि पूर्वक दर्शन, पूजा नहीं करता वह श्रावक नहीं कहलाता। वह गृहस्थ संसार की चौरासी लाख योनियोंमें भटकता है। वह अकेला ही पाप करता है और अकेला ही उनका फल भोगता है। वह खाने, पीने, कमाने में लीन रहता है और उसके फलस्वरूप चार गतियोंमें भ्रमण करता है और अन्तमें निगोदमें भटकता है। "णमो लोए सव्व साहुणम्" इसमें से 'लोए' शब्द तो पाँचो पदोंमें लागू होता है। मुनि बताते हैं कि साधु वह है जिसे आत्मा का भान है, निर्ग्रंथ दशा है। ऐसोंके अतिरिक्त जो अन्य को साधु मानता है संसार

में भटक कर निगोदमें जायगा। जीवने अनंतकालसे सत्य बात नहीं सुनी। आचार्य भगवान कहते हैं कि जो अपने धन को पवित्र करना चाहते है वे शुभराग पूर्वक देव-गुरु-शास्त्र या उनकी प्रभावनाके लिए अपने धन का उपयोग करते हैं, उन्हीं का वास्तवमें पवित्र करना है। अतः जिनेन्द्र देव की पूजा, स्तुति आदि कार्य तथा उत्तमादि पात्रों को दान अवश्य करना चाहिए।

आचार्य दाता की महिमा बताते है :—

गाथा—१६

चिन्तारत्नसुरद्रुकामसुरीभस्पर्शोपलाधा भुवि।
ख्याता एव परोपकार करणे दृष्टा न ते केनचित्॥
तैरत्रोपकृतं न केषुचिदपि प्रायो न सम्भाव्यते।
तत्कार्याणि पुनः सदैव विदधद्दाता परं दृश्यते॥१६॥

जिन-शासन की प्रभावनामें दान देनेवाला
चिन्तामणि रत्न समान है :—

श्रीमद् राजचंद्रजी ने इस शास्त्र को "वन शास्त्र" कहा है। सर्वज्ञने जैसा देखा वैसा ही इसमें वर्णन किया है। इन्द्रिय दमन करके जो इस शास्त्र का अध्ययन करे तो उसके लिए यह अमृत तुल्य है।

चिन्तामणि रत्न की देव सेवा करते हैं जिसके चिन्तवन-

मात्रसे मकान आदि बन जाते हैं किन्तु क्या उससे धर्म हो सकता है ? नहीं। कल्पवृक्षसे मनुष्यकी आवश्यकता की वस्तुएं मिल जाती हैं। कामधेनु गाय भी इच्छा करते ही दूध दे देती है इन सबसे सांसारिक वस्तुएं प्राप्त हो जाती हैं किन्तु केवलज्ञान या सम्यक्ज्ञान नहीं मिलता। पारसमणिके स्पर्श मात्रसे लोहा सोना बन जाता है। ऐसे अनेक उपकारी पदार्थ संसारमें हैं ऐसा सुना जाता है किन्तु साक्षात उपकार करते नहीं देखा तथा कोई किसी का उपकार करे यह संभव नहीं है किन्तु चितामणि रत्न आदिके करनेवाले दाता अवश्य देखनेमें आते हैं। आत्म-प्रेम सहित देव-गुरु-शास्त्र की शोभा-वृद्धिके लिए मनवांछित दान देनेवाला दाता चिन्तामणि समान है। शास्त्रमें लिखा है कि नवीन कमाईमें से चतुर्थांश देव-गुरु-शास्त्र की प्रभावनाके लिए दिया जाना चाहिए। पद्मनंदि आचार्य हजार वर्ष पहले हुए हैं, दिगम्बर जैन धर्मके स्तंभ हैं, परम्परा की रीति शास्त्रमें बतलाते हैं कि ऐसे दाता देखने में आते हैं। लड़कीके विवाहमें दहेजमें रुचिपूर्वक सोना, कपड़ा आदि दिया जाता है; उसी प्रकार धार्मिक कार्योंमें खर्च करना चाहिए। जिसे धर्मके प्रति प्रेम है और धर्मार्थ धन देता है उसे चिन्तामणि कहते हैं, उसे कल्पवृक्ष कहते हैं, उसे कामधेनु, पारस पत्थर कहते हैं। जिन्हें आत्मा का भान है किन्तु वर्तमानमें केवलज्ञान नहीं हुआ है ऐसे धर्मात्मा दान करते हैं तो उन्हें चितामणि समान कहा है। आत्मा की लगन वालेको धर्म प्रभावनाकी लगन हुए बिना नहीं

रहती, आजकल कुछ लोग तो सत्यका विरोध करते हैं। इस सत्य बातके माननेसे सम्प्रदायमें, कुटुम्बमें, बाधा आयेगी, ऐसा मानने वाले धर्मके योग्य नहीं हैं। इस प्रकार इस गाथामें आचार्यने दाताको चिन्तामणि आदि कहा है।

गाथा—२०

यत्र श्रावकलोक एव वसति स्यात्तत्र चैत्यालयो
यस्मिन्सोऽस्ति च तत्र सन्ति यतयो धर्मश्च तैर्वर्तते।
धर्मे सत्ययसंचयो विघटते स्वर्गापवर्गाश्रयं
सौख्यं भाविनृणां ततो गुणवतांस्युः श्रावकाः सम्मताः ॥२०॥

धर्मात्मा धर्म प्रवृत्तिका निमित्त है, अतः धर्मात्मा श्रावकका आदर करना चाहिए।

श्री पद्मनंदि आचार्य सनातन मार्गके अनुसार कहते है कि उनके समयमें वीतरागी प्रतिमा वाले मन्दिर बहुत थे, उन पर वस्त्र नहीं, फूल नहीं, आंगी नहीं होते किन्तु जैसा माताने जन्म दिया वैसी ही भगवानकी प्रतिमाके दर्शनार्थ धर्मी जीव अपने ग्राममें नगरमें, मन्दिर बनाते हैं।

"कहत बनारसी अल्प भव स्थिति जाकी।
सोई जिन प्रतिमा प्रवानै जिन सारखी॥"

जिसे अपने ज्ञानके स्वरूपका बोध हुआ है वह पूर्ण ज्ञान वाले भगवानकी अविद्यमानतामें उनकी प्रतिमा बनाता है।

जिस ग्राम, नगरमें जिन मंदिर, जिन प्रतिमा नहीं है वह ग्राम नगर श्मशान तुल्य है। जहाँ जिनमन्दिर हैं वहां मुनि, ब्रह्मचारी आदिके आनेसे शास्त्र-प्रवचन आदि होते हैं, जीव धर्मका श्रवण करके मननपूर्वक स्वाध्याय करे, औरको करावे। यह शरीर तो नाशवान है—ऐसा विचार कर जो धर्म प्राप्तिके लिए विशेष प्रयत्न करते हैं उनके पाप नष्ट होते है। जहा संसारी प्राणी सवेरेसे शाम तक सांसारिक कार्योंमें लगा रहता है वहा धर्मात्मा धर्मकी प्रवृत्तिमें दत्त-चित्त रहता है। जो धर्म-दृष्टि पूर्वक भगवानके दर्शन करते हैं उनके पाप नष्ट होते ही है। आत्मभान बिना केवल दर्शन करनेसे पाप नष्ट नहीं होते। सत् प्राप्तिके इच्छुक पूर्ण सत्को प्राप्त भगवानके दर्शन करते हैं। भगवानके दर्शनसे निद्धत और निकांचित प्रकृतिके उग्र बंध वाले कर्म भी नष्ट हो जाते है। भगवान तीन काल और तीन लोक के साक्षी हैं, उन्हींके समान मेरा स्वरूप भी तीनलोकका साक्षी है, ऐसी श्रद्धा करने वालेने अपूर्व सम्यग्दर्शन प्राप्त किया है। ऐसा सम्यग्दृष्टि बहुतसे पापोंका नाश करता है। धर्मात्मा राग रहित होकर मोक्ष जाता है या स्वर्ग जाता है, इसलिए धर्मात्मा, श्रावकका आदर-सत्कार करना चाहिए। संसारमें रहने वाले जिन भाई-बहनोंको आत्म-ज्ञान हो गया है और धर्मके प्रति अनुराग हो गया है वे सम्मान और श्रद्धाके पात्र हैं।

भावार्थः—धर्मात्मा श्रावक अपने धनसे जिन मन्दिर बनाते हैं, वहां मुनि भी दर्शनार्थ आते हैं, उन मुनियोंके आग-

मनसे श्रावकों को धर्म श्रवणका लाभ होता है। विद्याचरण (ऋद्धि धारक) मुनिको आकाशमें जाते हुओं को, नीचे पृथ्वीपर जिन मन्दिर दृष्टिगोचर हो जाय तो वे नीचे उतर कर दर्शन करते हैं। धर्मात्मा को रागांशसे स्वर्ग मिलता है और तत्पश्चात् वह रागांश भी समाप्त हो जाता है, वे मोक्ष प्राप्त करते हैं। श्रावक-श्राविकादि द्वारा धर्मकी प्रवृत्ति होती है इसलिए वे धर्मकी वृद्धिके निमित्त है, अतः उनका आदर अवश्य करना चाहिए।

गाथा—२१

काले दुखमसंज्ञके जिनपते धर्मगते क्षीणतां,
तुच्छे सामयिके जने बहुतरे मिथ्यान्धकारे सति।
चैत्ये चैत्यगृहे च भक्ति सहितो यः सोऽपि नो दृश्यते,
यस्तत्कारयते यथाविधि पुनर्भव्यः स वंद्यः सताम् ॥२१॥

इस कालमें धर्मात्मा तथा धर्म प्रवृत्ति की दुर्लभता है।

अहो! दुषम काल-कलिकालमें त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञदेव का सत्य मार्ग बहुत क्षीण हो गया है, इस मार्गके विरुद्ध अनेक मार्ग हो गए हैं। आत्मभानवाले, ध्यानमें लवलीन रहनेवाले मुनि इस कालमें बहुत थोड़े है। इन दिनों तो भारतमें सच्चे मुनि भी दृष्टिगोचर नहीं होते। आत्मा आनंद-कंद है, अमृत के समुद्र समान है, सच्चे मुनि ऐसे स्वरूपमें दृष्टि और ध्यान

लगाए रहते हैं और सिंहके समान निर्भय वृत्तिसे जंगलमें विचरण करते हैं। किन्तु वर्तमानमें वह मार्ग बहुत कुछ अंशो में लुप्त हो गया है और विपरीत मान्यता और अज्ञानके अंध-कार का विस्तार हो गया है। जगतके प्राणियों का अधिकांश समय कमाने, खाने-पीने भोगादिमें चला जाता है और जो कुछ थोड़ा-सा समय बचता है उसे साम्प्रदायिक कुगुरू लूट लेते है। मुनित्व क्या है? निश्चय क्या है? व्यवहार क्या है? इनका ज्ञान उन कुगुरुओं को नहीं है। ऐसे कुगुरुओंके पास जाने से धर्म नष्ट हो जाता है। कहीं हंस न हो किंतु सफेद बगलें हों तो वे हंस थोड़े ही माने जाते है। उसी प्रकार किसी का शरीर नग्न होने मात्रसे वह भाव लिंगी नहीं माना जा सकता और जिनके अन्य आचरण ठीक नहीं हों, उनका तो कहना ही क्या?

जो जीव भक्तिपूर्वक जिन-मन्दिर आदि बनाते हैं वे वंद्य है।

पहले श्रावक भगवान की प्रतिमाके प्रति भक्तिभाव रखते थे तथा भक्ति पूर्वक जिनमंदिर बनाते थे। किन्तु आजकल अपने निजी मकान बनाते समय ही बहुत ध्यान रखते हैं, पहले श्रावक लोग मंदिर, प्रतिमा आदिके निर्माणार्थ बहुत दान देते थे। प्रतिमा वीतरागी और शात होनी चाहिए जिसके दर्शनसे अविकारी स्वरूप का भान द्रष्टाको हो। जो भव्य जीव इस समयमें विधि अनुसार जिनमंदिर आदि का निर्माण कराते हैं वे वंदनीय हैं। पहलेके श्रावक श्राविकाएं आदि धर्मके प्रति भक्ति रखते थे, किन्तु आजकल तो सिनेमा आदि देखने की

प्रवृत्ति बढ़ती जाती है। भगवानके दर्शन करते हुए ऐसा लगता है कि इन्द्र भी भगवान को नमस्कार करता था। समस्त उत्तम पुरुष भगवान की भक्ति सहित निर्मल हृदयसे स्तुति करते हैं।

गाथा—२२

बिम्बादलोन्नतिदेवोन्नतिमेव भक्त्या।
यः कारयन्ति जिनसद्म जिनाकृति वा॥
पुण्यं तदीयमिह वागपि नैव शक्ता।
स्तोतुं परस्य किमु कारयितुर्द्वयस्य॥२२॥

जो आत्मभान पूर्वक जिन-मन्दिर का निर्माण कराते हैं उनके पुण्य का वर्णन अगम्य है।

आचार्य कहते है कि जो जीव भक्तिपूर्वक कुन्दुकके पत्ते समान मंदिर बनाता है अर्थात् जिसे निर्ग्रंथदशा वाली मूर्ति का भाव हुआ है वह छोटा-सा मंदिर और जा जितनी प्रतिमा बनाता है वह धन्य है। संसारी जीव अपने कुटुम्बियों की फोटो उतरवाने के लिए अच्छा फोटोग्राफर बुलाते हैं उसी प्रकार यदि कोई वीतरागी प्रतिमा और मंदिर न बनावे तो उसे धर्म की रुचि नहीं है। तीनलोकके नाथ का प्रतिबिम्ब उनकी स्थिति के अनुकूल ही पूर्ण वीतरागता युक्त होना चाहिए—वह शृङ्गार युक्त न हो अपितु शांत, वीतरागतायुक्त हो ऐसी प्रतिमा और ऐसा-ही मंदिर बनाने वाले को पुण्य प्राप्त होता है। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि एक पदार्थ पर पदार्थ की क्रिया कर

सकता हो किन्तु यहाँ शुभराग का कथन है। जो अनुराग भाव से जिन-मंदिर बनाता है उसके पुण्य का वर्णन सरस्वती भी भली प्रकार नहीं कर सकती। जो धर्म प्रेम सहित लाखों रुपए खर्च करके जैन-मन्दिर और प्रतिमा बनाते है उनको अनोखा पुण्य लाभ होता है। वे उस पुण्यजनित संयोगों को छोड़ कर मुनि बन मुक्तिमें जाएंगे। जिसे ऐसा प्रेम नहीं है वह श्रावक नहीं कहला सकता। निश्चय दृष्टिवाले श्रावक को ऐसा भाव आए बिना नहीं रहता।

भावार्थः—बिम्बा-पत्र तथा जौ की ऊंचाई बहुत थोड़ी है किन्तु आचार्य उपदेश देते हैं कि इस पंचमकालमें अगर कोई मनुष्य बिम्बा-पत्रके जितनी ऊंची प्रतिमा भी बनाता है उसके पुण्य की स्तुति साक्षात् सरस्वती देवी भी भली प्रकार नहीं कर सकती।

जिसे स्वभाव की दृष्टि हो गई है वह जीव वीतरागी होगा, उसका क्या वर्णन किया जाय? परन्तु जो मनुष्य ऊंचे २ मंदिर और प्रतिमाएं बनाता है उसका पुण्य अगम्य है और साधारण-जनोंके लिए अकथनीय है। अतःभव्यजनोंको पूर्ण वीतरागी शात मुद्रायुक्त प्रतिमाएं तथा मंदिर उत्साहपूर्वक अवश्य बनाने चाहिए।

यह कथन इस कालके श्रावकोंके लिए किया गया है कि उन्हें भक्तिपूर्वक वीतराग भगवानके मंदिर बनाने चाहिए।

(प्र० भादवा सुदी ४, रविवार, ता० २१-८-५५)

मेरे स्वभावमें आनन्द है; ऐसी श्रद्धा करके आनन्द मार्ग पर चलनेवाला श्रावक है।

श्रावक किसे कहें ? आत्मा का स्वरूप शुद्ध चैतन्य, वीतरागी है, निर्दोष शांति इस स्वरूपमें ही प्राप्त हो सकती है अन्यत्र नहीं। जो अंतरंग की शांति का आश्रय लेकर राग कम करे वही श्रावक है। देह, मन, वाणीसे आत्मा भिन्न है। शरीरमें, स्त्रीमें मकानमें सुख है क्या ? नहीं, उनमें शांति नहीं है। क्या परमें शांति है ? नहीं। जो आत्मीय शांति का इच्छुक है उसे निर्णय करना चाहिए कि शांति कहाँ मिलेगी ? परमें आत्मीय सुख नहीं है, सुख तो आत्म-स्वभावमें है, आत्मा त्रिकाल-ज्ञानी और आनन्द-स्वरूप है उसकी श्रद्धा करनी चाहिए। ऐसे आत्मा की वीतरागता पूर्ण पवित्र श्रद्धा कर राग घटानेसे आंशिक अविकारी दशा होती है, उस भूमिकामें, आंशिक शुभ-राग होता है। यह अवस्था श्रावकके होती है।' 'परमें सुख है' की भ्रांति का नाश करके आत्माके आनंद, वीतराग स्वरूपके निर्णय करने का इच्छुक श्रावक कहलाता है। इस स्वरूप का विश्वास करके पुण्य-पाप तथा संयोगों का भरोसा छोड़ना चाहिए, उनमें सुख नहीं है, वह तो मेरे स्वभावमें है ऐसे विश्वास सहित वह राग कम करता है। ऐसे मार्गके बतानेवाले देव, गुरु शास्त्रके प्रति अनुराग, भक्ति प्रकट करता है वह श्रावक कहलाता है। यदि धनमें सुख हो तो धनसे गड़ जानेपर ज्यादा सुख होना चाहिए, किन्तु संयोगमें सुख नहीं है। अज्ञानी

जीव संयोगसे ममत्त्व करता है किन्तु शरीर, लक्ष्मी, घर आदि सब कुछ, अंत समयमें, यहीं रह जाएंगे, 'वे मेरे, मैं उनका' यह ममता बुद्धि ही साथ रहेगी। किन्तु इसमें सुख शांति नहीं है। मेरा स्वभाव वीतराग निर्दोष है, इसके आश्रयसे ही शाश्वत शांति प्रकट होती है। श्रावक देव-गुरु-शास्त्रके प्रति अनुराग रखता है, इसे ही गृहस्थाश्रम का धर्म कहा है। जो स्त्री, पुत्र, परिवारमें सुख मानता है; अपनेमें सुख न मानकर परमें सुख माननेवाला मूर्ख है। मेरा स्वभाव शुद्ध आनन्दमय है, इसके आश्रयसे ही सुख है, ऐसी मान्यता वाला श्रावक कहलाता है, कुलमें, सम्प्रदायमें जन्म लेने मात्रसे श्रावक नहीं हो जाता।

आनन्द मार्गके पथिक श्रावक को पूर्ण आनन्द-स्वरूपी भगवान की प्रतिमा और मन्दिर बनाने का भाव होता है।

अरागी आत्मा आनंद-कंद है वही मेरा स्वभाव है, ऐसे स्वभावके प्रति विनयी जीव पूर्ण आनंद को प्राप्त सर्वज्ञ देवके प्रति प्रेम करता है। स्त्री-पुत्रसे प्रेम करनेवाला जीव उनकी फोटू देखकर संतुष्ट होता है उसी प्रकार वर्तमानमें वीतरागी सर्वज्ञ देव की अविद्यमानता है, और अपने वीतरागी आत्मा की श्रद्धा है किन्तु अपनी पूर्ण दशा प्राप्त नहीं हुई है इसलिए श्रावक सर्वज्ञ देवके जिन-मन्दिरके लिए दान अवश्य करता है। पूर्णानन्द प्राप्त देव की वीतरागी मुद्रा को देखकर जिसे उनका और अपने स्वरूप का स्मरण होता है वह इस पंचमकालमें वीतराग भगवान की प्रतिमा और मन्दिर बनाने की इच्छा किए बिना

नहीं रहता। जैसे अपने निवासके लिए अच्छा मकान बनाता है वैसे ही, वीतराग देव त्रिकाल-वेत्ता सर्वज्ञ परमात्मा हैं, जिनकी वाणी सर्वज्ञता प्रकट करनेमें निमित्त है, उनकी प्रतिमा और जिन-मन्दिर बनाने का भाव श्रावकके आये बिना नहीं रहता।

गाथा—२३

यात्राभिः स्नपनैर्महोत्सवशतैः पूजाभिरुल्लोचकैः।
नैवेद्यैर्वलिभिर्ध्वजैश्च कलशैरतौर्यत्रिकैर्जागरैः॥
घण्टा चामर दर्पणादिभिरपि प्रस्तार्य शोभां परां।
भव्यः पुण्यमुपार्जयन्ति सततं सत्यत्र चैत्यालये॥२३॥

श्रावक जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा तथा मन्दिरो आदि की प्रभावनामे अनेक भक्ति भाव करता है।

इस संसारमें चैत्यालय होने से धर्मी जीव को अपनी शांति का ज्ञान हुआ है, इसलिए वह पूर्ण शांति को प्राप्त सर्वज्ञ देवके वियोगमें उनकी प्रतिमा का पूजन आदि करता है। जिन्हें पूर्ण आनंद प्राप्त हो गया है, भोजनादि की व्याधि नहीं रही है ऐसे भगवान की प्रतिमा और चैत्यालय बनाकर श्रावक बारम्बार भक्ति करता है। चैत्यालय हों तो लोग भगवानके प्रतिबिंबके दर्शनकर पाप दूर करते हैं और पुण्यार्जन करते हैं यद्यपि यह सत्य है कि भगवान कुछ करते या देते नहीं हैं। "हे प्रभु! मेरा भव-भ्रमण समाप्त कर दो।" भक्त कहता है किन्तु क्या भगवान ने अबतक रुलाया? नहीं तूने अपने आप ही भव-भ्रमण किया

है और अब तू ही इस भ्रमण को समाप्त कर सकता है। भगवान की प्रतिमा तो निमित्त है। पूर्णानंद और मुक्ति प्राप्त सर्वज्ञके विरहमे उनकी प्रतिमा बनाई जाती है, मूर्ति को भगवान के रूपमें धर्मात्मा श्रावक स्वीकार करते हैं और भक्ति करते हैं। उनका शुद्ध जलसे अभिषेक किया जाता है किन्तु आज कल अभिषेकमें बहुत गड़बड़ी हो गई है; जलके स्थान पर दाल, दूध, दही, मीठा आदिसे अभिषेक किया जाता है। यह ठीक नहीं है, अभिषेक केवल शुद्ध जलसे ही करना चाहिए। अपने बच्चे को नहाते समय माँ प्रसन्न हो जाती है उसी प्रकार भगवान की प्रतिमा पर जलके अभिषेकको देखकर श्रावक प्रमुदित हो जाते हैं। मूर्तिकी उत्थापना करना वास्तविक मार्गसे दूर है। पुत्र, पुत्री, स्त्री आदिका जन्म दिवस मनाना पापवृत्ति है। आत्माका प्रेमी भगवान सर्वज्ञदेवके विरहमें उनका बारम्बार उत्सव करता है, पूजा करता है। स्वयं भरत चक्रवर्ती भगवान की पूजा करता था। धर्मीके अन्तरंगमे अपने पूर्ण स्वरूपकी पूर्ण प्रतीति है किन्तु जबतक स्वयंको पूर्णता प्राप्त नहीं हो जाती तब तक वह पूजा आदि करता है, वह पापसे बचता है और उसे पुण्यका भाव होता है। जिस ग्राममें मन्दिर नहीं हो तो इच्छा रखते हुए भी, धर्मी कहां दर्शन करे? अतः प्रत्येक धर्मीका कर्त्तव्य है कि वह अपने निवास स्थानमें मंदिर बनाये। पद्मनंदि आचार्य दिगम्बर वीतरागी मुनि थे। मुनिके पास दयाका उपकरण मयूर पंखकी पीछी और शारीरिक अपवित्रता दूर

करनेके लिए कमंडलमें जल होता है, यही साधुके लिए सनातन पद्धति है। वर्तमानमें साधुकी सनातन पद्धतिका अभाव है। ऐसे वीतरागी मुनिने ताड़ पत्रोंपर छिद्र करके यह ग्रन्थ लिखा है। भगवानके सम्मुख नैवेद्य चढ़ाते समय उनके (भगवानके) अनाहारपणे की भावना श्रावकको जागृत होती है और वह भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करता है, नवीन मंदिरपर ध्वज दण्ड चढ़ाता है, उत्सव करता है। देव-गुरु-शास्त्रके प्रति श्रावकको बार-बार प्रमोद होता है। अपने पुत्र-पुत्रीके विवाहादिमें जैसे गृहस्थको प्रसन्नता व उत्साह होता है उसी प्रकार धर्मीको वीतराग प्रतिमा की शोभाके लिए भाव आये बिना नहीं रहते।

धर्मी जीव मंदिरके शिखरपर कलश चढ़ाते हैं, बाजा बजवाते हैं, मंदिरमें घंटा चंवर, दर्पण आदि लगाते हैं इस प्रकार इन सब सुन्दर वस्तुओंसे मंदिर की उत्कृष्ट शोभा करते है और महान पुण्यका संचय करते है। इसलिए जहां चैत्यालय का अभाव हो वहां भव्य जीवोंको चैत्यालय अवश्य बनाना चाहिए। इस प्रकार दानका प्रकरण पूरा हुआ।

गाथा—२४

ते चाणुव्रत धारिणोऽपि नियतं यान्त्येव देवालयं।
तिष्ठन्त्येव महर्द्धिकामरपदं तत्रैव लब्ध्वा चिरम्॥
अत्रागत्य पुनः कुलेऽति महति प्राप्य प्रकृष्टं शुभान्।
मानुष्यं च विरागतां च सकल त्यागं च मुक्तास्ततः॥२४॥

श्रावक अणुव्रतका पालनकर देवगति पाएगा, वहांसे चयकर मनुष्य होकर मोक्ष प्राप्त करेगा।

धर्मी जीव गृहस्थ दशामें जिनेन्द्रदेवकी पूजा, गुरुकी वंदना संयम, तप, ध्यान और स्वाध्याय—ये ६ आवश्यक अवश्य करता है, पांच अणुव्रत ग्रहण करता है,—अहिंसा, सत्य, अचौर्य ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहका आंशिक पालन करता है। ऐसा श्रावक स्वर्गमें जायेगा। आत्माके आनन्दकन्द स्वरूपकी श्रद्धा रखने वाले छः आवश्यक और पांच अणुव्रतका पालन करनेसे स्वर्गमें जाते हैं।

सीमंधर भगवान वर्तमानमें विदेह क्षेत्रमें है वहां धर्मात्मा मर कर नहीं जाते। जो मनुष्य शुद्ध चिदानन्दकी प्रतीति करता है और बारह व्रत पालता है वह मरकर मनुष्य न बनकर देव गतिमें जाता है। मिथ्यादृष्टि मनुष्य मरकर मनुष्य हो सकता है। विदेह क्षेत्रका नाम सुनकर अज्ञानी प्रसन्न होता है। जिन जीवोंको शुद्ध चैतन्य शक्तिका भान है उन्हें शुभ रागके परिणाम स्वरूप स्वर्गके इन्द्रादिके पद मिलते हैं। जिस खेतमें सौ मन अनाज हो वहां घास भी तदनुरूप होती ही है उसी प्रकार धर्मात्माको आनन्दकन्द चैतन्यकी दृष्टि है वह जबतक पूर्णताको न पहुंच जाय तब तक उसे शुभ रागके फलस्वरूप देव पदकी प्राप्ति होती है। आजकल यह कहा जाता है कि "यह भव मीठा तो परभव किसने दीठा" यह ठीक मान्यता नहीं है। धर्मात्मा शुभ रागके फलस्वरूप प्राप्त देवगतिमें बहुत काल तक

रहता है; आयु समाप्त होनेपर पुनः मनुष्य गति मिलती है। उसे मनुष्य भवमें वैराग्य होता है "अहो! मेरा कार्य अपूर्ण रह गया इसलिए मैं देवगतिमें गया था।" इस प्रकार वह तीव्र वैराग्यकी भावना करके समस्त परिग्रह छोडकर निर्ग्रंथ वीतरागी मुनि बनता है और तपश्चरण करता हुआ अन्तमें मुक्ति प्राप्त करता है। चैतन्य शक्तिके भान वाला जीव, पूर्णदशा प्राप्त नहीं होनेके कारण, शुभ रागके परिणाम स्वरूप स्वर्गमें जाता है और वहासे चयकर मनुष्य होकर मुक्ति जाये, इस प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव तीन भवमें मुक्त हो सकता है।

आत्माकी पूर्ण शक्ति प्रकट कर पूर्ण आनन्दका अनुभव करना मुक्ति है, इसे धर्मात्मा गृहस्थ तीसरे भवमें पा सकता है, इसी कारण अणुव्रतादि बारहव्रत मुक्तिके कारण है इसलिए भव्य जीवोंको छः आवश्यक पूर्वक अणुव्रतादिका पालन करना चाहिए। यह जीव खान, पान और अर्जनके काय दिन रात करता रहता है, धर्मात्मा इनसे बचनेके लिए दया, दान, पूजा आदि किए विना नहीं रहता। शुद्ध दृष्टि वाले धर्मात्मा इसी क्रमसे मुक्ति प्राप्त करेंगे।

गाथा—२५

पुन्सोऽर्थेषु चतुर्षु निश्चलतरो मोक्षः परं सत्सुखः।
शेषास्तद्विपरीतधर्मकलिता हेया मुमुक्षो रतः॥
तस्मात्तत्पदसाधनत्वधरणो धर्मोऽपि नो सम्मतो।
यो भोगादि निमित्तमेव स पुनः पापं बुधैर्मन्यते ॥२५॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन ४ पुरुषार्थोंमें मोक्ष उत्तम पुरुषार्थ है

पुरुषार्थ चार प्रकारके हैं :—

१ *धर्म पुरुषार्थ* :—राग की मंदता का—दया, दान, सेवा, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का—पुरुषार्थ, यह पुण्य पुरुषार्थ है।

२. *अर्थ पुरुषार्थ* :—कमाने का पुरुषार्थ है, यह पाप पुरुषार्थ है।

३. *काम पुरुषार्थ* :—भोग का पुरुषार्थ है, यह पाप है।

४. *मोक्षः*—पुण्य पाप रहित मेरा शुद्ध चैतन्य स्वरूप है, ऐसी श्रद्धा कर पूर्णदशा प्रकट करनेका प्रयत्न करना मोक्ष पुरुषार्थ है।

इन चारोंमें मोक्ष पुरुषार्थ उत्तम है। इसके अतिरिक्त अन्य पुरुषार्थ विपरीत मार्ग की ओर ले जानेवाले हैं। आत्मा शुद्ध चिदानंद है, ऐसी श्रद्धावाले धर्मात्मा जीव को विषयभोग या कमाने की इच्छा या उद्योग नहीं करने चाहिए। इस ग्रन्थ की अन्तिम गाथामें आचार्य कहते हैं कि "जो मनुष्य मुमुक्षु हैं और मोक्ष की प्राप्तिके अभिलाषी हैं उनके लिए युवती स्त्रियोंके साहचर्यके निषेधार्थ यह ब्रह्मचर्याष्टक बनाया है किन्तु जो मनुष्य भोग-विलासमें आसक्त हैं, अगर उन्हें यह अष्टक अच्छा नहीं लगे तो मुझे मुनि समझ कर क्षमा करें।" अतः भोग-विलासमें रुचि छोड़ना ही कल्याणकारी है क्योंकि इस मनुष्य-भवमें भी निम्न दर्जेके भाव करोगे तो आगे नीच गति पाओगे। अर्थ और काम पुरुषार्थ पाप है। धर्म-दया दानादि का भाव—पुण्यकारी पुरुषार्थ है। स्वभाव की दृष्टिपूर्वक सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति पुण्य की निमित्त है किन्तु अगर कोई

इस मान्यतासे भक्ति करे कि इससे मुझे सामग्री मिलेगी, राजा होउंगा, धनी होऊंगा तो यह पुण्य निमित्त न रहकर पाप का निमित्त हो जाएगा। इसलिए इस मान्यताके साथ ये कार्य नहीं करने चाहिए। आत्मा की दृष्टिपूर्वक होनेवाले शुभ भाव मोक्ष के निमित्त हैं, उनका अभाव होने पर मुक्ति होगी। पूर्णानन्द आत्मा का विश्वास होने पर भी अपनी निर्बलतासे स्थिर नहीं रह सकता इसलिए धर्मी को देव-गुरु-शास्त्रके प्रति शुभ राग आता है जो कि मोक्षमें निमित्त है।

भावार्थः—धर्म पुरुषार्थ पुण्यकारी है और अर्थ तथा काम पुरुषार्थ पापरूप है। इसलिए मोक्ष पुरुषार्थ पुण्य-पाप रहित अंतरंग की स्वभाव दृष्टि-करना सच्चा धर्म है। ऐसी श्रद्धा होनेपर देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति आदि को व्यवहार धर्म कहा है। जिस पुरुषार्थसे विकारी दशा नष्ट कर अविकारी दशा-मोक्षदशा-प्रकट हो, ऐसा मोक्ष पुरुषार्थ उत्तम है। धन तो अपने कारणसे आता और जाता है, बड़े २ राजा महाराजा, नवाब बादशाहोंके राज्य समाप्त हो गये; इसलिए पुण्य और पाप दोनों को छोड़ कर अपनी पूर्णदशा प्रगट हो ऐसा मोक्ष पुरुषार्थ ही धर्मी जीवों को करना चाहिए और कमाने तथा भोग-विलास का पुरुषार्थ छोड़ना चाहिए।

फल की इच्छासे पुण्य पुरुषार्थ नहीं करना चाहिए।

श्रावकके पाँच अणुव्रत-अहिंसा, सत्य, अचौर्य, स्वदार

संतोष व्रत, अपरिग्रह-होते है। किन्तु शुभरागमें संयोग की इच्छा करना पाप है इसलिए सर्वथा त्याज्य है। भव्य जीवों को तो मोक्ष प्राप्ति का उद्योग ही करना चाहिए। आत्माके आनंद, वीतरागी स्वभावके बलसे पूर्णदशा प्रकट करना ही मुक्ति है। सिद्ध शिलापर रहना मुक्ति नहीं है, वहा तो निगोदकायके जीव भी रहते हैं। आत्म-स्वरूप की रुचि छोड़ परमें अटकना और तत्परिणाम स्वरूप विकार होना ही संसार है। आत्म-स्वभाव विकार रहित है, ऐसी श्रद्धा कर और उसमें लीन होकर पूर्ण-स्वरूप प्रकट करना मोक्ष पुरुषार्थ है।

गाथा—२६

भव्यानामणुभिव्रतैरनणुभि साध्योऽत्र मोक्षः परं।
नान्यत्किंचिदिहैव निश्चयनयाज्जीवः सुखी जायते॥
सर्वंतु व्रतजातमीदृशधियाः साफल्यमेत्यन्यथा।
संसाराश्रय कारणं भवति यत्तद् दुःखमेव स्फुटम् ॥२६॥

भव्य जीवोको मोक्षके निमित्त अणुव्रत और
महाव्रत ग्रहण करने चाहिए।

मनुष्य भव मिला है इसलिए योग्य जीवोंको अणुव्रत अवश्य पालने चाहिए। मुनि महाव्रत—अहिंसा, सत्य, अचौर्य ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहका पालन करते हैं जिनके पुण्यसे उन्हें स्वर्ग मिलता है किन्तु उन्हें स्वर्गकी कामना नहीं है। शुभ राग मोक्षके निमित्त है किन्तु पुण्य साध्य नहीं है। अज्ञानी पुण्यकी इच्छा करता है। ज्ञानीके जबतक पूर्ण स्वरूपकी प्राप्ति न हो

जाय तब तक शुभ राग आते हैं किन्तु उनमें तथा उनके फलमें सुख नहीं है। आनन्द-कन्द आत्माके अवलम्बनसे जो पूर्ण दशा हो वह मोक्ष है। श्रावकके १२ व्रत तथा मुनिके २८ मूलगुण उनकी मुक्तिके निमित्त है; यदि इनसे अन्तमें मुक्ति हो जाय तो ये निमित्त कहलाते हैं किन्तु जिसकी दृष्टि शुभ रागके प्रति है उसके लिए ये व्रतादि संसारके कारण हैं; उसके लिए पुण्य दुख रूप हैं क्योंकि उसका पुण्य आत्म-सुखका निमित्त नहीं है। मुनियोंको भी मोक्ष दशाके निमित्त पांच महाव्रतादि अपनानेका भाव आता है। उसी प्रकार श्रावकको अणुव्रतोंके धारणका राग होता है। आत्म-दृष्टिसे शुभ राग अनर्थ-कारक हैं किन्तु चरणानुयोगकी पद्धतिमें कहा जाता है कि व्रत धारण करो। द्रव्यानुयोगमें कहा जाता है कि धर्मात्माकी दृष्टि राग करनेकी नहीं होती।' निश्चयके ग्रन्थोंमें कहा गया है कि व्रत अनर्थके कारण हैं किन्तु साधकको अपनी भूमिका अनुसार शुभ राग-व्रतादिक अपनानेका राग होता ही है। मुक्त स्वभावका आश्रय करनेसे शाति मिलती है किन्तु अपूर्ण अवस्थामें श्रावक को अणुव्रतका राग आए बिना नहीं रहता इसलिए उसे अणुव्रत धारण करना चाहिए, ऐसा चरणानुयोगमें कहा गया है।

'देशव्रतोद्योतन' नामक अधिकारकी समाप्ति करते हुए आचार्य इस अधिकारका फल बताते हैं:—

गाथा—२७

यत् कल्याणपरम्परार्पणपरं भव्यात्मनां संसृतौ।

पर्यन्ते यदनन्त सौख्य सदनं मोक्षं ददाति ध्रुवम्।
तज्जीयादति दुर्लभं सुनरता मुख्यैर्गुणैः प्रापितम्।
श्रीमत्पंकजनन्दिभिर्विरचितं देशव्रतोद्योतनम् ॥२७॥

आत्मभानपूर्वक देशव्रत स्वर्ग तथा परम्परासे मोक्षका कारण है।

इस गाथाके साथ यह अधिकार पूरा होता है। इस अधिकारमें छः आवश्यक सहित देशव्रतका वर्णन किया। धर्मात्माको आत्माके भानपूर्वक इन्द्रपद मिलता है, फिर मनुष्य होकर मुक्ति प्राप्त करता है। देव भी चक्रवर्तीकी सेवा करते है। पुण्यके प्रतापसे धर्मी जीव चक्रवर्ती, बलदेव आदि बनते हैं। इस अधिकारका भाव अनन्त काल तक रहे। वह मोक्ष दशाका कारण है इसलिए मनुष्य भवमें देशव्रतादिका भाव करे तो उसकी सफलता है। पद्मनंदि आचार्यने इस ग्रन्थ की रचना की है। वे दिगम्बर मुनि थे, जंगलमें रहते थे ऐसे मुनि द्वारा प्रणीत यह शास्त्र और उसमें वर्णित श्रावक धर्म चिरकाल रहे।

भावार्थः—यह देशव्रतोद्योतन इन्द्र, अहमिन्द्र चक्रवर्ती आदि महान पदों की प्राप्ति का कारण है तथा इससे उत्तम मनुष्य, कुल आदि की प्राप्ति होती है आत्मानन्दके भानपूर्वक पूर्ण आनन्द प्रकट हुआ है; ऐसे परमात्मा के प्रति भक्ति और अणुव्रत का भाव श्रावक को आए बिना नहीं रहता।

इस प्रकार पद्मनन्दि पंचविंशतिका का 'देशव्रतोद्योतन' नामक अधिकार समाप्त हुआ।